श्रीकृष्ण-सन्देश

वर्ष : ५० अंक : १०

माधवका स्वागत

भृङ्ग प्रवोनके वीन रवोंपर
गा उठो स्वागत-सी पिकी वाला,
सज्जित वाटिकामें वनमें
बहुरंग प्रसूनका रंग निराला।
रोलो गुलाल पलासकी डालमें
रम्य रसालमें है मधु ढाला,
माधवको पहना रहो प्यारसे
माधवी मंजु मधूककी माला ॥

गंध सुगंध समोर लुटा रहा
भीर जुटा रहा भौंरकी भारो,
भाती वनस्थली मंजुल वेशमें
शारदा देशमें केसर-क्यारी।
पद्मिनी मानसमें खिलने लगी
इन्दिराकी उतरो ज्यों सवारी,
नाच उठी दिग-अंगना नेहसे
देह धरे हरे रंगकी सारी ॥

'राम'

श्रीकृष्ण-सन्देश

धर्म, अध्यात्म, साहित्य एवं संस्कृति-प्रधान मासिक

★

प्रवर्तक
ब्रह्मलीन श्रीजुगलकिशोर विरला

परामर्श-मण्डल

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दार

डॉ० श्रीभुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'

श्रीजनार्दन भट्ट एम०ए०

श्रीहितशरण शर्मा एम०ए०

प्रबन्ध-सम्पादक

देवधर शर्मा

सम्पादक

पाण्डेय रामनारायणदत्त शास्त्री,
साहित्याचार्य

स० सम्पादक

विश्वम्भरनाथ द्विवेदी

वर्ष : ५ अङ्क : १०
मई, १९७०

वार्षिक शुल्क : ७.००
आजीवन शुल्क : १५१.००

प्रकाशक :
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ, मथुरा
दूरभाष : ३३८

विषय-सूची

●

विषय	लेखक	पृ० सं०
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद	....	३
शान्ति और सुखका स्रोत	....	७
धर्म-प्रेरणाके स्रोत	स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती	९
भक्त-भक्ति और भगवान्	श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़	१३
हमारे जीवनका लक्ष्य-आत्मबोध	श्री फणीन्द्र नाथ मुखोपाध्याय	१६
भारतीय दर्शन साहित्यपर श्रीकृष्णकी गीताका प्रभाव	श्री कन्हैया लाल भेड़ा	२०
आदर्शकी सीमा	(एक संतका प्रसाद)	२४
सूरके कृष्ण	श्री हरिशंकर पाण्डेय	२५
सूर-सप्तक	श्री जगदीश शरण 'मधुप'	२८
आचमन	श्री अशोक शास्त्री	२९
श्रीराधा किशोरी	श्री गोकुलानन्द तैलंग	३२
माधुर्य-भक्तिरस	श्री रामलाल बी० ए०	३४
सतीशिरोमणि सीता	'राम'	३८
साहित्यकारका दायित्व	श्री गोविन्द शास्त्री	५२
जगद्गुरु श्रीशंकराचार्य	श्री सुधाकर दीक्षित	५६
सक्तुदान	'शङ्खपाणि'	६०

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान : प्रेरणाप्रद

प्रत्यक्षदर्शियोंके उद्गार

(अप्रैल १९७०)

★

(मई १९७०)

यहाँके कण-कणमें हैं श्रीकृष्ण और राधा ।

विश्वम्भरदयाल गौड़
जनरल मैनेजर, पूर्वोत्तर रेलवे, गोरखपुर

श्रीकृष्ण न केवल देव थे, देवताओंमें भी पूर्णावतार माने जाते हैं । उनकी जीवनी-कार्यकलाप, उनका दर्शन, उनकी जीवनके प्रति हर क्षेत्रमें उनका अपना महत्त्व प्राचीन कालसे हिन्दू-संस्कृतिको पूरा करता, पल्लवित करता व सँवारता है । वह हमारे अचिर व चिर प्रेरणास्रोत रहे हैं । उनकी यह जन्मभूमि सबके लिए पूज्य है । आशा है आनेवाले समयमें यह पुण्य जन्मस्थली एक आदर्शस्थल बन सकेगा । मेरी शुभ कामनाएँ इसके साथ हैं ।

रामकिशोर मित्र
आई० पी० एस०, एस० पी०, अलीगढ़

अद्याहं कृष्ण-जन्मभूमेः दर्शनार्थं आगतवान् । वस्तुतः जन्मभूमिस्थलमिदं दर्शनीयं तथा च संस्कृतेः केन्द्रमस्ति । अत्र श्रीकृष्ण-जन्मभूमि-सेवाट्रस्ट संस्था अस्य संरक्षणे विकासे च यद् योगदानं दीयते, तत्सर्वं स्तुत्यं प्रशंसनीयं चास्ति ।

अहमस्याः संस्थायाः विकासं कामये । देशस्य जनता अस्मिन् धार्मिककार्ये उदारतया सहयोगं करिष्यन्तीति शम् ।

अवधविहारी त्रिपाठी
अध्यक्षः ज्योतिषविभागस्य
वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

वसन्तपञ्चमी
१०।२।७०

Thank you for an enjoyable Tour of Krishna's birthplace. The inhabitants of this region are so hospitable to foreigners that we feel almost at home (away from home). Being students it is most anlightening to actually visit these religious, cultural, historic Sites····far better by far than simply reading information out of books. The best of love, luck and happiness now and always.

Jerry and Judy Jennings
960, Linda Florada
Los Angeles
California (U. S. A.)

I am very impressed by the beauty of of Lord Krishna.

L. W. Carp
Holland

Staying in Agra for a few days we have made a trip to Mathura to see this temple. We are glad that we have come here and we are very impressed seeing place. Thak you for the kind explanations.

Ingrid and Kurt Macijewli
1 Berlin 19, Linderallei
24, Germany (West)

A great and historical religious place.

French Chemist Group
58, Persons
Paris (France)

This is a great historical and religious place. I am glad that steps are now taken to build a temple and give other amenities to the pilgrims. I wish all success to the endeavour.

M. A. Manick Avelu
Chairman, Legislature Council
Tamil Nadu, Madras-9

I have been very happy indeed to visit Krishna Janmasthan today. The work which is being carried out here is really very Commendable and it is a real service to the entire Indian nation. I have visited this lacality earlier also with Mr. Bhagwan Das Bhargaw who looked in this institution tillthe last moment of his life. I wish every success to the workers and promoters of this institution and I pray to Lord Krishna to help them in their endeavour.

Brij Narain
Retd. Judicial
Comissiner Manipur and Tripura,
14 Muir Road, Allahabad-2

I was so much impressed by too beautiful structure of Krishna.

S. Isozaki
Tokyo, Japan

A sip in a cup of the
Makes body and mind free
After days hard turmoil
When all attempts foil
To recoup lost vigour
TEA is the only succour.

For

BEST QUALITY TEA

Always Remember

THE ANANDA (ASSAM) TEA CO., LTD.

11, Brabourne Road

CALCUTTA—1

Phone No. : 22-0181 (4 Lines)

GARDEN

Ananda Tea Estate

श्रीकृष्ण–सन्देश

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥

वर्ष : ५]　　मथुरा, मई १९७०　　[अङ्क : १०

शान्ति और सुखका स्रोत

तुम अशान्त क्यों रहते हो ? कभी इसपर विचार किया है ? नहीं, तो मुझसे सुनो। तुमने न तो अपनेको समझा है और न मुझे ही जाना-पहचाना है। तुम्हारा आत्मा, नहीं-नहीं तुम स्वयं नित्य शान्त, परम सुखमय—सच्चिदानन्दस्वरूप हो। दुःख और अशान्ति तुम्हें छू नहीं सकते। फिर भी तुम दुखी और अशान्त होते हो—इसमें तुम्हारा अज्ञान ही कारण है। इस अज्ञानको दूर भगाना होगा। कोई राजकुमार या राजा होकर भी यदि अज्ञानवश अपनेको दीन-हीन दुखी समझ बैठे तो उसका दुःख कौन दूर करेगा ? अज्ञानका अन्धकार दूर करनेके लिए ज्ञानका दीपक जलाना होगा। ज्ञान नित्य प्रकाशमान है, उसपर अज्ञानका आवरण पड़ा है, उसे हटाना होगा। सूर्य सदा तेजसे उद्भासित है। मेघोंका आवरण तुम्हारी आँखोंके सामने आ जाता है, इसलिए तुम सूर्यको नहीं देख पाते। वह आवरण तुम्हारी आँखोंपर, मन-बुद्धिपर है, सूर्यपर नहीं है। इसी प्रकार अज्ञानका आवरण नित्य-शुद्ध-बुद्ध आत्मापर नहीं, तुम्हारी मन-बुद्धिपर है, उसे हटाना होगा। तमोमय अज्ञान हटेगा, ज्ञानमय भास्करके प्रकाशसे।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।
तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥

इसीलिए सब यज्ञोंमें ज्ञानयज्ञको श्रेष्ठ माना गया है। ज्ञानमें समस्त कर्मोंकी समाप्ति हो जाती है। ज्ञानाग्निकी ज्वाला सम्पूर्ण कर्मोंकी समिधाको भस्म कर देती है। उस ज्ञानकी प्राप्ति होगी गुरुदेवके चरणोंमें प्रणत होनेसे, जिज्ञासासे और सेवासे। वह ज्ञान तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंसे प्राप्त होगा। ज्ञानके समान पावन कोई वस्तु नहीं है। ज्ञान मिलता है श्रद्धावान् जिज्ञासुको। वह भी तब जब वह उसकी साधनामें तत्पर हो, जितेन्द्रिय हो, ज्ञानामृतपानके

लिए सदा गुरुकी सेवामें सोत्साह जुटा रहे। ज्ञान मिल जाय तो क्या होगा ? शीघ्र ही परम शान्ति— परम सुखकी प्राप्ति—**ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।**

जो कर्मयोगका पथिक है; वह भी यदि कर्मोंके फलका परित्याग कर दे। कर्तव्यबुद्धिसे कर्म तो करता रहे किन्तु उसका फल न चाहे तो उसे भी शान्ति प्राप्त होगी, साधारण नहीं नैष्ठिकी शान्ति, जो अक्षय है, अविचल है। **युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।**

जो भक्तिकी भागीरथीमें स्नान करनेवाला है, उसे तो शान्तिकी उपलब्धि मेरी कृपासे स्वतः हो जाती है। मुझे सख्यभाव अब बहुत प्रिय है। समस्त जीव मुझ गोपालके सखा हैं; यदि वे मुझे अपना परम सुहृद् मान लें और अपनी सारी चिन्ता मुझपर डालकर स्वयं निर्भय निश्चिन्त हो जायँ तो शान्ति उनके घरमें झाड़ू देती फिरेगी। बिना दयाकी चेरी हो जायगी। **सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।** ध्यानयोगीके लिए तो यह शान्ति और भी सुलभ है। मनुष्य वहीं रहता है, जहाँ उसका मन हो। ध्यानयोगीका मन केवल मुझमें लगा होता है। और शान्ति तथा निर्वाणका अनन्त महासागर मैं ही हूँ। मुझमें जो स्वरूपभूता शान्ति है उसे वह पाता—अनुभव करता रहता है—**शान्तिं निर्वाण-परमां मत्संस्थामधिगच्छति ।**

तुम ज्ञान, कर्म और भक्ति किसी भी पथसे मेरी ओर बढ़ो मैं तुमपर शान्तिको सुधामयी स्रोतस्विनी उड़ेल दूँगा; सुखका महासिन्धु निछावर कर दूँगा। साधनके पथपर जो नहीं चल रहा है, वह भी यदि अपने रोगका निदान करके दोषका परित्याग कर दे तो वह भी स्वस्थ एवं सुखी हो सकता है। अशान्ति या चिन्ता क्यों होती है ? जब कोई कुछ चाहता है, और वह उसे नहीं मिलती है। अतः इसके मूलमें कोई-न-कोई कामना है। मनुष्य अनात्म वस्तुओंसे सम्बन्ध जोड़कर दुखी होता है। यह मेरा है, इसे कुछ हो न जाय—इत्यादिकी चिन्ता मनको चैन नहीं लेने देती। अतः ममता भी अशान्तिका बीज है। लोग अज्ञानवश अपनेको बड़ा समझते और दूसरोंको छोटा मानकर दबाना चाहते हैं। उनकी इस वृत्तिमें अहंकार ही कारण है; जो मनको अशान्त बनाये रखता है। इसलिए मनुष्य कामना, अहंकार और ममताको तो सर्वथा त्याग दे और निःस्पृह भावसे कर्तव्यके पालनमें लगा रहे। इस तरह पथ्य परहेजसे रहनेवालेको कभी अशान्तिकी बीमारी नहीं होगी। वह शान्तिसुधाके सिन्धुमें निरन्तर अवगाहन करता हुआ परम सुख—अक्षय आनन्दका अनुभव करेगा—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ॥

जिसने कामना छोड़ दी है; वही शान्ति पाता है। कामकामीको कभी आराम नहीं मिलता—**स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।** सदाके लिए सबके लिए यह एक ही परम शान्तिका मार्ग है कि वह समस्त प्राणियोंके हृदयमन्दिरमें विराजमान मुझ परमेश्वरकी शरण ले। मेरी कृपासे वह परमशान्ति तथा शाश्वत पदको अनायास ही प्राप्त कर लेगा। **तत्प्रसादात् परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।** ●

शास्त्रानुसारिणी बुद्धिसे अन्तर्मुखता—

धर्म-प्रेरणाके स्रोत

स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वती

★

जैसे वायुका धर्म गति और अग्निका धर्म दाह है, वैसे ही मनुष्यका धर्म मनुष्यत्व है। मनुष्य-शरीरमें मज्जागत एक विशेषता है, रक्तगत एक वीर्यवत्ता है, चित्तगत एक संस्कार है, बुद्धिगत एक विचारधारा है, स्वभावगत एक रसप्रवाह है, आत्मगत एक अनुवृत्ति-व्यावृत्तिका बोध है। वस्तुतः मनुष्य धर्म छोड़कर जीवित नहीं रह सकता। भिन्न-भिन्न वस्तुओंके चिन्तनमें लगे रहनेके कारण मनुष्य आत्मनिरीक्षण नहीं कर पाता। आप थोड़ी देरके लिए स्वस्थचित्तसे अपने धर्मके सम्बन्धमें चिन्तन कीजिये। आपको धर्म-प्रेरणा कहाँसे प्राप्त होती है?

१. क्या आपको ऐसा प्रतीत होता है कि ईश्वर धर्मके लिए प्रेरित करता है? वह प्रेरणा किस प्रकारकी होती है? क्या उसका रूप कुछ ऐसा होता है कि तुम अपने मन एवं इन्द्रियको इस कर्मसे, भोगसे, संग्रहसे और भाषणसे अलग रक्खो? इस निषेधात्मक प्रेरणाका बड़ा महत्त्व है। आप इसपर गम्भीरतासे ध्यान दीजिये। अथवा ईश्वरसे इस प्रकारकी प्रेरणा मिलती है कि इस प्रकारका कर्म, भोग, संग्रह और भाषण करो? प्रवर्तक प्रेरणामें धर्मको पहचानना कठिन है। क्या आप अज्ञानियोंको ज्ञान, कंगालोंको अन्न-वस्त्र, रोगियोंको औषध देनेकी प्रेरणा ग्रहण करके उसके अनुसार आचरण करते हैं?

२. क्या आप ईश्वरकी प्रेरणा और पूर्व संस्कारोंकी प्रेरणामें भेद कर सकते हैं? पूर्व संस्कार अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके होते हैं। उनसे समय-समय पर दोनों प्रकारकी प्रेरणा भी प्राप्त होती है। यदि आप पूर्व संस्कारोंके द्वारा ही अपने जीवनको संचालित करेंगे तो आपका अन्तर्द्वन्द्व कभी मिट नहीं सकेगा। अनादि कर्म-प्रवाहसे उत्पन्न संस्कार और उनसे बना हुआ स्वभाव समुद्रकी बाह्य-आभ्यन्तर दबाव और उथल-पुथलके समान परस्पर संघर्षरत रहते हैं। इन पर अपने जीवनको छोड़ा नहीं जा सकता। हाँ, इनसे ईश्वरकी प्रेरणाको पृथक् करना विशिष्ट अन्तर्दृष्टिके बिना सम्भव नहीं है।

ईश्वरकी तटस्थता एवं असंगतापर दृष्टि डाली जाय तो वह कोई स्वैच्छिक, स्वतन्त्र एवं नवीन प्रेरणा नहीं दे सकता। वह आपके अन्तःकरणकी उपाधिको अपने सान्निध्य मात्रसे आभासित और सञ्चालित करता है। ऐसी स्थितिमें ईश्वरका नियमन भी पूर्व संस्कारानुसार ही मानना पड़ेगा। तब फिर हमें गम्भीरतासे यह देखना होगा कि जब हम पूर्व संस्कार अथवा उसकी उपाधि स्वीकार करके ईश्वरके द्वारा संचालित होते हैं तो हम सदा उनके द्वारा नियन्त्रित कठपुतली ही बने रहेंगे; कर्म-चक्रसे मुक्त नहीं हो सकते। हमें कुछ नवीन कर्म करने होंगे, जो अनादि कालसे अनवरत प्रवाहित कर्म-धाराको नया मोड़ दे और हमारी यात्राको मुक्तिके लिए उन्मुख करे। कम-से-कम वह ऐसी तो होनी ही चाहिए जो स्थूल देह

और उसके सम्बन्धोंको शिथिल करके सूक्ष्म शरीरको प्रधानता दे। परलोक, आन्तर रसास्वादन, समाधि अथवा शुद्धिकी भावना जाग्रत् करके सत्य तत्त्वकी जिज्ञासाकी ओर ले जाय। इसके लिए नवीन क्रिया-कलापकी प्रेरणा क्या आप पूर्व संस्कारोंपर छोड़ देते हैं ? अथवा इसके लिए कोई नवीन स्रोत ढूढते हैं ?

३. आपका धर्म आपके अस्तित्व, ज्ञान, आनन्द, नियन्त्रण-शक्ति और समन्वय-भावनाकी रक्षाके लिए होना चाहिए। धारणके अभिप्रायसे 'धर्म' शब्दके प्रयोगका यही अर्थ है। इसके लिये सामाजिक परिस्थितिसे प्रेरणा लेने पर सुधार-भावनाका जन्म होता है। भौगोलिक परिस्थितिसे विचार करनेपर राष्ट्रीयता परिपक्व होती है। ऐतिहासिक दृष्टिकोणसे देखने पर संस्कृति-प्रेमका जन्म होता है। आचार्य-परम्परा पर ध्यान देनेसे सम्प्रदाय-मर्यादा जुड़ती है। मूल पुरुषकी प्रधानतासे जातीयता आती है। श्रम और अर्थकी प्रधानतासे विचार करनेपर वर्ग-विशेषसे तादात्म्य होता है। ऐसे अनेक बाह्य कारण हो सकते हैं, जिनसे आप धर्मकी प्रेरणा ग्रहण करते हों, परन्तु ये सब-की-सब दृष्टियाँ अधूरी हैं और धर्मके केवल तात्कालिक एवं एकांगी रूपका परिचय देती हैं। कभी-कभी ये परस्पर संघर्ष करती हैं और धर्मके नाम पर अधर्मको ही अभिव्यक्ति देती हैं। दृष्टि-विशेषमें आविष्ट पुरुष तमसावृत होकर अधर्मको ही धर्म मानने लगता है। उससे अपने ही प्रयोजनका गला घुट जाता है। इनमें-से किसी एकमें आपकी प्रियता आपको पक्षपाती और दूसरोंके प्रति क्रूर बनाती है। क्या आप इनसे मुक्त रहकर धर्मका सच्चा ज्ञान प्राप्त करनेके लिए प्रयत्नशील हैं ?

४. क्या आप वस्तुके गुणावगुण और क्रिया-कलापके द्वारा निष्पन्न होनेवाले परिणामों पर अन्वय-व्यतिरेककी दृष्टिसे विवेक करके धर्माधर्मका निर्णय करते हैं ? द्रव्यके गुणावगुणका विवेक केवल साधारण दृष्टिसे रासायनिक प्रक्रियाके द्वारा नहीं किया जा सकता। उसके लिए देश, काल, जाति, व्यक्ति, मान्यता, अवस्था, स्थिति, शक्ति, वय आदिका सम्पूर्ण ज्ञान अपेक्षित होता है। कब, कहाँ, किसके लिए, किस परिस्थितिमें क्या हितकारी है ? यह सर्वज्ञ ईश्वरके अतिरिक्त और कौन जान सकता है ? रही बात क्रिया-कलापकी, सो समग्र मानव-जातिके लिए सार्वकालिक एवं सार्वभौम उदार दृष्टिसे विचार करनेका दावा कौन कर सकता है ? अनुदीर्ण और संकीर्ण दृष्टि होनेपर अपने ग्रन्थ और पन्थका बोल-बाला हो जाता है और अपनी डफली और अपना राग बजने लगता है। द्रव्यके गुणावगुण और क्रिया-कलापके परिणामोंका लौकिक सम्बन्ध यथाकथंचित् ज्ञात भी हो जाय तो पारलौकिक सम्बन्ध ज्ञात करनेका कोई उपाय नहीं है। इसलिए यदि आप केवल अपनी बुद्धि और विवेकके द्वारा धर्मकी प्रेरणा प्राप्त करते हैं तो आप पुनर्विचार कीजिये—आपका युक्तिवाद भुक्तिका हेतु हो सकता है, मुक्तिका नहीं। क्या बालक, वृद्ध, और मूर्खजन भी इस युक्तिसे धर्म-प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं ? यदि नहीं, तो धर्मके उद्गम-स्थानकी ओर भी गहराईमें ढूढना आवश्यक है। धर्मके प्रेरक तत्त्व इतने उथले स्तरपर नहीं रहा करते।

५. क्या आप ऐन्द्रियक ज्ञान एवं मानसिक संवेदनोंसे अपने चित्तमें जो अनुभव-संस्कार एकत्र करते हैं और उनके आधारपर जो अनुमानाभास और उनके बच्चे-कच्चे वंश-वृद्धि

करते हैं, वे धर्मका साक्षात्कार करनेके लिए पर्याप्त प्रामाणिक हैं ? यदि धर्मका लौकिक प्रत्यक्ष हो जाता और उसके आधारपर होनेवाले अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति अथवा अनुपलब्धिके द्वारा हम उसको देख पाते तो क्या सृष्टिमें धर्मके सम्बन्धमें इतने मतभेद और संघर्षोंकी सृष्टि हो पाती ? श्रम वस्तुशोधनके लिए होता है। धर्म अधिकारी शोधनके लिए होता है। जड़ताकी प्रधानतासे श्रम और चैतन्यकी ओर उन्मुखतासे धर्म। प्रत्यक्षादि प्रमाण बाह्यदर्शी होते हैं। धर्म अन्तरंग वस्तु है। वह अन्तःकरणको दोषमुक्त और अन्तर्मुख करता है। आत्मा अथवा परमात्मामें स्थित करानेवाला परमधर्म है—योग अथवा भक्ति। परन्तु आत्मा-परमात्माके ऐक्यका बोध किसी धर्मका परिणाम नहीं है। धर्म-संस्कारके द्वारा केवल विकारकी निवृत्ति-मात्र होती है। ऐक्यका बोध तो चरम एवं परम प्रमाणका विषय है। ऐसी स्थितिमें यदि आप ऐन्द्रियक अथवा मानसिक संवेदनोंको प्रेरक मानकर धर्मका निर्णय करते हैं तो क्या आप सच्चे धर्मका निर्णय कर सकेंगे ? क्या आपके इन्द्रिय और मन प्राकृत विकार एवं संकीर्ण संस्कारसे मुक्त हैं ?

६. प्राकृत वस्तुओंके अनुकरण-कौशलके उत्कर्षसे कलाका विकास होता है, उनपर आधिपत्य प्राप्त करके उपयोगी बनानेकी प्रक्रियासे विज्ञानका। बाह्य पदार्थोंके परिवर्तन, प्रवर्तन अथवा संशोधनके लिए श्रमकी अपेक्षा होती है, परन्तु धर्म वह काम करता है जो इनमें किसीके द्वारा सम्पन्न नहीं होता। उसका काम है—अन्तःकरण शुद्धि द्वारा ज्ञाताके प्रकाशित होनेके मार्गमें जो प्रतिबन्ध हैं, उनको दूर करना। विशेष करके अन्तःकरणसे मलिन वासनाओंको निकाल देना और उसको एक विशेष आकारमें पहुँचाना धर्मका काम है। ऐसी स्थितिमें धर्मकी प्रेरणाके लिए अज्ञात ज्ञापक, शासनात्मक, वासना-प्रतिरोधी, बाह्य-क्रियात्मक स्रोतकी अपेक्षा है। फल मिलनेपर धर्मका पता चलनेसे केवल आगेके लिए अनुभव संग्रह किया जा सकता है या अमुक प्रकारकी वृत्तिसे जो उत्पन्न अदृष्ट या अपूर्व होगा, पता नहीं, वह कब हमारे काम आयेगा ? वस्तुतः धर्म ऐसा होना चाहिए कि हम अपनी क्रिया और भावके द्वारा इसी समय, इसी स्थानमें, किसी वस्तुका ठीक-ठीक सदुपयोग कर सकें। जैसे, अकालके समय दुर्भिक्ष-पीड़ित स्थानमें क्षुधा-पीड़ित जनताको अपने हाथसे उठाकर हम कुछ अन्न-धन दे सकें। यदि धर्मका ऐसा रूप नहीं होगा तो वह किसी मनुष्यके द्वारा कैसे अनुष्ठित होगा ? और यदि अनुष्ठित नहीं हो सकेगा तो धर्मका अर्थ ही क्या ? इसको प्राचीन भाषामें यों कहा जा सकता है कि पुण्यकालमें यज्ञशालाके अन्दर यज्ञ करानेवाले ऋत्विजको जब दक्षिणा दी जायगी, तब धर्म होगा। धर्मका रूप सर्वथा दृष्ट होना चाहिए, उससे अदृष्टकी उत्पत्ति हो या दृष्ट फल मिले। उसके लिए चाहिए—अधिकारी, श्रद्धा, विधान, क्रिया, सम्पत्ति, सहायक और समग्रता आदि।

अब किस नियम, व्रत, दान, आदान, स्नान, कर्मको धर्म कहा जाय—यह बात वासनानुसार नहीं, शासनानुसार ही निश्चित करनी पड़ेगी। उस शासनका जो शाश्वत, सार्वभौम, मौलिक रूप है, उसे 'शास्त्र' कहते हैं। वह देश, काल, वस्तु, क्रिया, पुरुष, अन्तः-करण आदि की उत्पत्तिके पूर्वसे ही बीज रूपमें रहता है और रूप-व्याकृतिके साथ ही उसको

नाम-व्याकृति भी होती हैं। जो ईश्वर सृष्टिका निर्माता है पूर्व कल्पानुसार, वही शास्त्रका भी निर्माता है। दोनोंका ही वह प्रकाशक-मात्र है। करण-निबन्धन-कर्तृत्व उसमें नहीं है। क्या आप किसी ऐसे शास्त्रको मान्यता देते हैं? उसके विज्ञानको समझनेका प्रयत्न करते हैं? यदि नहीं, तो आप अपनेको तत्त्वज्ञान और धर्मके मार्गसे कहीं विमुख तो नहीं कर रहे हैं? ज्ञानात्माके शुद्ध स्वरूपको संकेतित करनेवाली यह शास्त्र-प्रक्रिया आपकी धर्म-प्रेरणाका स्रोत क्यों नहीं बनती? जहाँ वासनानुसारिणी बुद्धि आपको बहिर्मुख बनाती है वहाँ शासनानुसारिणी बुद्धि अन्तर्मुख करेगी। धर्मानुष्ठान करना तो अलग, इस धर्मानुशासनको हृदयंगम करनेका प्रयत्न भी आपको धर्मात्मा होनेकी प्रेरणा देगा।

●

जगदीश्वर-विहार

झर झर झरपि झरन झरनन झरि,
झिलमिल झलकत झप झलमल में॥
छम छम छमकि छहरि छिरकत छवि,
छलकत छपकि छलकि छलछल में।
सुरति सुमति धर कुमतिन छय कर
जगपति विहरत नित जल थल में॥
जनपद जनमत जनित जुटन जुरि,
जनरव जमघट जटिल जटल में।
अघटन घटन घटित घटकित घन,
अलखित अटपट पटित पटल में॥
अति अभिलषित अमित अभिमत गति,
अजर अमर पद अमिट अटल में।
सुरति सुमति धर कुमतिन छय कर,
जगपति विहरत नित जल थल में॥
नव विरचित तुक रहित अनमिलित
चिर परिचित पद कवित गजल में।
सर गम सुर शिव डिमडिम डम डम,
अ इ उ ण जश झष शषसर हल में॥
गुणित गणित गुण गुथित गणक गण,
गुणक गुणन गुण गथ गुणफल में।
सुरति सुमति धर कुमतिन छय कर,
जगपति विहरत नित जल थल में॥

—श्री शिवकुमार सिंह 'मयूर'

सब साधनको एक फल जेहि जान्यों सो जान।

भक्त, भक्ति और भगवान्

श्री जगन्नाथ मिश्र गौड़ 'कमल'

★

एकबार नैमिषारण्यमें विचरते हुए देवर्षि नारदसे ऋषियोंने पूछा कि प्रभुके दर्शन कैसे हो सकते हैं ? मुक्ति कैसे प्राप्त होती है ? जीवनको सार्थक बनानेका क्या साधन है ? देवर्षिने इन प्रश्नोंका उत्तर संक्षेपमें दिया। उनके उत्तरका शब्द था "भक्तिं अर्थात् प्रभुका चिन्तन जो मनुष्यको भगवान्का सामीप्य प्रदान करता है।"

भगवान्के सान्निध्यके लिए साधनाका संबल प्राप्त करना होता है और सभी प्रकारके साधनोंके लिए भक्तिका साहाय्य अनिवार्य है। भक्ति एक सार्वभौम उपाय है।

मानव-जीवनके अतिरिक्त जितनी भी योनियाँ हैं, सभी कर्मोंके फलको भोगनेके लिए मिलती हैं। इन योनियोंके माध्यमसे संसारमें आनेवाले जीवोंको परमात्माका सामीप्य प्राप्त करनेका कोई साधन उपलब्ध नहीं होता। विवेकशील पुरुष मानव-जीवनके रहस्यको समझकर परमात्माको जानने और उनके रूपको आत्मसात् करनेकी चेष्टा करते हैं।

परमात्मा न तो उन्हें मिलते हैं, जो शास्त्र-विद्वान् होकर परमात्म-तत्त्वका वर्णन करते हैं और न उन्हें ही मिलते हैं जो अपनी बुद्धिकी प्रखरताको मूल मानकर तर्क द्वारा उन्हें समझना चाहते हैं। परमात्मा उन्हें भी नहीं मिलते जो उनके विषयमें केवल आख्यायिकाएँ, दृष्टान्त, कथाएँ अदि सुनकर उन्हें पा लेनेकी आशा रखते हैं।

परमात्माका सामीप्य उसीको प्राप्त होता है जिसको वे कृपा-निर्भर साधक समझकर स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे साधकके हृदयमें परमात्माके लिए उत्कट इच्छा समाविष्ट रहती है। वे परमात्माके विना रह नहीं सकते।

भक्ति, मार्गपर शुद्ध हृदयसे चलनेवाला व्यक्ति एक समय ऐसे स्थलपर पहुँच जाता है, जब उसे भगवान् स्वीकार कर लेते हैं। मनुष्यको ऐसे स्थलकी उपलब्धि उसके मनकी स्थिरतापर निर्भर करती है। मनकी स्थिरतासे ज्ञानके नेत्र खुलते हैं और इसी नेत्रसे भगवान् पहचाने जाते हैं।

विमूढा नानुपश्यन्ति, पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषा।

इसी पक्षमें उर्दूके कवि गालिबकी उक्ति है—

असले शहूद शाहिदो मशहूद एक हैं।
हैराँ हूँ फिर मुशाहिदा है किस हिसाबमें ॥

जब देखनेवाला, दृश्य और दर्शन एक ही हैं, जब सभीमें एक ही ईश्वर हैं तब फिर किसका दर्शन किया जाय ? इसका स्पष्ट अर्थ यही होता है कि अपने आपमें भगवान् हैं और उनका दर्शन केवल ज्ञान-नेत्रसे किया जा सकता है।

भक्ति वही है जो ज्ञान-नेत्रको खोल दे। जो साधनाकी गूढताको प्रत्यक्ष करे और प्रत्यक्ष कर्म-भापामें साधनाको सफल करनेकी बुद्धि दे।

यों तो भगवान्ने भक्तिके तीन रूप बतलाये हैं—सकाम भक्ति, निष्काम किन्तु एकाङ्गी भक्ति और सम्पूर्ण भक्ति। सकाम भक्ति करनेवाला कुछ इच्छा मनमें रखकर भगवान्के पास जाना चाहता है। निष्काम एकाङ्गी भक्त तीन रूपोंमें विभक्त हैं। पहली श्रेणी है आर्तताकी, दूसरी जिज्ञासाकी और तीसरी अर्थ-भावनाकी। आर्तताकी स्थितिमें भक्त दया-प्रार्थी, भगवान्के लिए विक्षिप्त होकर आतुरताके आवेगमें छटपटाता रहता है। वह कब भगवान्को पाकर उनके चरणोंमें अपनेको डाल दे। जिज्ञासाकी भावना धारण करनेवाले भक्तके हृदयमें अदम्य जिज्ञासा होती है। वह जिस पथका अनुसरण करता है, उसकी दिशामें चलता हुआ गुण-अर्थकी खोज करता है। अर्थार्थी भक्त सभी कर्मोंमें अर्थका संकेत चाहता है। उस कर्मको करनेमें वह सोचता है कि उसके भविष्य गर्भमें कल्याण है अथवा नहीं। अगुण भावनाओंपर आधारित कर्म उसे स्वीकार नहीं होते।

आर्ततामें प्रेम-विह्वलता है। अतएव प्रेमकी भावनासे क्रिया-रत होनेवाला भक्त आर्त भक्त है। ज्ञान-संकलन और ज्ञानोपार्जनकी दृष्टिसे क्रियाओंका अवलोकन करनेवाला भक्त जिज्ञासुकी श्रेणीमें आता है और सर्वकल्याण सर्वोन्नति तथा सर्वोदयकी भावना रखनेवाला भक्त अर्थार्थी कहलाता है। इन सभी भक्तोंका लक्ष्य एक ही होता है। वह लक्ष्य है भगवान्के समीपस्थ होना। अन्तर केवल यही है कि एक कर्मके द्वारा दूसरा हृदयके द्वारा और तीसरा बुद्धिके द्वारा भगवान्को पाना चाहता है।

पूर्ण भक्त ज्ञानीको कहते हैं। यह भक्त जो कुछ देखता है, उसे भगवान्का रूप मानता है। आर्तता, जिज्ञासा-वृत्ति एवं अर्थार्थता पूर्ण ज्ञानकी दिशामें ले जाती हैं। पूर्ण भक्तिको प्राप्त मनुष्यकी उक्ति इस प्रकार होती है :—

मतलब न कुफ्रसे है न इसलामसे है काम।
दिल देके ऐ सनम तुझे, सबसे बरी हुए ॥

धर्माधर्मसे अब हमारा कोई सम्बन्ध नहीं। तुमसे सम्बन्ध जोड़कर हम सबसे बरी हो गये।

भगवान् सर्वत्र हैं। पृथ्वी, आकाश, सूर्य, चन्द्र, सागर, सरिता, पशु, पक्षी, मनुष्य एवं जगत्के कण-कणमें उनका निवास है। उन्हें देखने और जाननेके लिए भक्तिकी पराकाष्ठा पर पहुँचना पड़ता है। उत्सुकता बढ़ानी होती है। उसके प्रेममें डूब जाना होता है।

इसीलिए जो व्यक्ति आत्म-तत्त्वको जानकर सब जीवोंमें आत्मभाव स्थिर करता है, सबको अपना-सा मानता है, वह सच्चा आत्मज्ञानी होता है। भक्तिकी यही पराकाष्ठा है।

छान्दोग्य-उपनिषद्में एक कथा आयी है। छः ऋषि परमात्मदर्शनपर विवाद कर रहे थे। कोई उसे आकाशमें व्याप्त समझता था, कोई अग्निमें, कोई अन्यत्र, किसी निर्णयपर वे नहीं पहुँच पा रहे थे। अतएव ब्रह्मदर्शी राजा अश्वपतिके पास जाकर उन लोगोंने निर्णय जानना चाहा। अश्वपतिके पूछनेपर ऋषि औपमन्यवने कहा 'मैं ब्रह्मको इस विस्तृत नीले आकाशमें व्याप्त समझता हूँ।' ऋषि सत्ययज्ञने कहा 'मैं ज्योतिर्मय आदित्यरूप परमात्माकी उपासना करता हूँ।' इन्द्रद्युम्न बोले 'मैं तो वेगवान् महाबली पवनमें ही ब्रह्मको पाता हूँ।' चौथे ऋषि जनने बताया कि 'वह तेजोमय दिव्य लोकमें बसता है।' बुडिलने ब्रह्मका निवास जलमें बताकर वरुण रूपमें उसकी उपासना उचित ठहरायी। ऋषि औद्दालकने कहा 'मेरी सम्मतिमें तो इन ऊँचे-ऊँचे पर्वतों, लहराती नदियों, भरे-पूरे नगरों और वन-वनान्तरसे सुशोभित माता पृथ्वीमें भगवान् विराजता है।'

राजा अश्वपतिने उनकी बातें सुनकर कहा 'वह वैश्वानर आत्मा तो घट-घट-वासी है, विश्वव्यापी है। इन छोटे-छोटे अंशोंमें ही उसे बंद करना उचित नहीं है। यह दिव्य लोक तो केवल उसका सिर है, सूर्य नेत्र है, वायु प्राण है, आकाश धड़ है, जल वस्ति है और पृथ्वी पाँव है। वह सारे विश्वका अन्तरात्मा है।'

निर्मल मतिकी मन्दाकिनीमें स्नान करनेके बाद पवित्रताका अटल विश्वास होता है और इस विश्वासके प्रकाशमें वह भगवान्‌का सान्निध्य पाता है।

भक्त साधक है, भक्ति साधना और भगवान् साध्य—आराध्य। यह एक योग है, यतन है और अन्तरात्माकी गति है।

आत्मतत्त्वं नयत्येनं तद्ब्रह्मध्यायिनं मुनिम्।
विकार्यमात्मनः शक्त्या लोहमाकर्षको यथा॥

भक्ति-साधनाका एकमात्र परिणाम है कि जिस किसी प्रकारसे भी हो भगवान् भक्तके मन-मन्दिरमें निवास करने लगें। जिसने इस रहस्यको जान लिया वह यथार्थ भक्त है।

सब साधनको एक फल जेहिं जान्यों सो जान।
ज्यों त्यों मन मन्दिर बसहिं राम धरे धनु बान॥

●

आत्मज्ञानमें श्रद्धाकी सहकारिता

हमारे जीवनका लक्ष्य—आत्मबोध

श्रीफणीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय

★

हमारे जीवनका लक्ष्य है—आत्मलाभ या आत्मोपलब्धि। यह श्रुति भगवतीका सनातन सिद्धान्त है कि 'आत्मलाभान्न परं विद्यते।' हममें ही हमारा परम विश्राम है, हमारी चरम प्रतिष्ठा है। हमारी आत्माका स्वरूप कैसा है? श्रुति जननी कहती है—'सत्, चित् तथा आनन्द, ज्ञानमय, शुद्धानन्द और परमानन्द। वह हैं तो हमसे दूर नहीं, पर हमारी जैविक मन-बुद्धि उसे हमसे दूर रखती है। वह है तो हमारे अति समीप, प्रत्येक चेतन जीवकी देहके मध्य—अन्तर-अन्तरमें निहित—'दूरात् सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम्।' हम उसका निरन्तर स्पर्श करते रहते है, किन्तु जान नहीं पाते। इसी स्पर्शके कारण हम जीवित रह पाते हैं, हमारी प्राणन-क्रिया अव्याहत रहती है।

मानवसभ्यताके उषःकालमें पुण्यभूमि भारतवर्षके पुण्यचरित्र ऋषियोंने मानव-कल्याणके निमित्त आत्मदर्शनके उपायका सन्देश दिया है—

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुं स्वाम्॥

(मुण्डक० ३।२।३)

आत्मा वेदाध्ययन, ग्रन्थपाठ और अनेकानेक शास्त्रोंके द्वारा लभ्य नहीं है, वह जिसको वरण करता है, केवल वही उसको (आत्माको) जान पाता है।

यह है तो अति सुन्दर, रोमाञ्चकर उपदेश, किन्तु हमारा सन्देह-दूषित मन प्रश्न-रत होकर रह जाता है—किस नियमसे आत्माकी कृपा प्राप्त होती है? क्या वह उच्छृङ्खल नृपतिके समान अपने महदनुग्रहको यदृच्छापूर्वक वितरण करता है?

इन प्रश्नोंके समाधानके लिए श्रुति जननी निर्वाक् नहीं हैं—

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिङ्गात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

(मुण्डक० ३।२।४)

'दुर्बल व्यक्ति आत्माको प्राप्त नहीं कर सकते। भोगेच्छा और निरर्थक लक्ष्यरहित तपस्याके द्वारा भी आत्माकी प्राप्ति नहीं होती। जो वीर्य, निष्कामता और प्रकृत तपस्याके पंथका अवलम्बन करते हैं, वे ही ब्रह्मधामके भीतर प्रवेशमें समर्थ होते हैं।'

अर्थात्

वन बहु विषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयंकर नाना॥

और

जे श्रद्धा संबल रहित नहि सन्तन्ह कर साथ।
तिन्ह कहँ मानस अगम अति जिनहि न प्रिय रघुनाथ॥

(रा० मान० बाल० ३९)

तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान्।
यस्य श्रद्दधतामाशु स्यान्मुकुन्दे मतिः सती॥

'तुम भगवान् श्रीकृष्णके प्रीति-पात्र हो'—यह पुराणकथा मैं तुम्हारे निकट वर्णन करूँगा। इसमें श्रद्धा रहनेसे श्रीगोविन्दमें निश्चला भक्ति होती है।'

यह सदुपदेश श्रीशुकदेवजीने महाराज परीक्षितको प्रदान किया था, जब वे ब्रह्म-शापग्रस्त होकर कलेवर-परित्यागके लिए गङ्गातीर पर निवास कर रहे थे।

अब प्रतिपादित हो गया कि आध्यात्मिक जीवनमें श्रद्धाकी शक्ति अपरिमेय है। यहाँ श्रद्धाका अर्थ आस्तिक्य-बुद्धि है (छा० उ० ७।१९ शाङ्कर-भाष्य)। ईश्वरके अस्तित्वमें प्रगाढ़ विश्वाससे धर्म-जीवन उज्ज्वल होता है। अन्यथा जीवन घोर तमसाच्छन्न हो जाता है।

वेदादि-धर्मग्रन्थोंमें श्रद्धाकी विपुल महिमाका गान किया गया है। अब प्रश्न यह है कि श्रद्धा क्या है? उसका स्वरूप क्या है? श्रद्धा एक अति सूक्ष्म वस्तु है। जो आँखोंसे दीख नहीं पड़ती। अनुभूतिके द्वारा ही हम उसके अस्तित्वका प्रमाण पाते हैं। मान लिया जाय कि मेरी अभीष्ट वस्तु विशेष दृश्य, अदृश्य, या स्थूल अथवा सूक्ष्म है। जब मुझमें इस बातकी दृढ़ धारणा होगी कि वह वस्तु सत्य है, तब उस धारणाको विश्वास कहा जायगा। जब उस सत्य तथा विश्वासके अनुसार मैं अपने जीवनके पथको निर्धारित और अपने जीवनको सुसम्पन्न करनेका संकल्प करूँगा, तब उस विश्वास और संकल्पकी एकताको श्रद्धा कहा जायगा। श्रद्धा, भक्ति, विश्वास, निष्ठा, ऐकान्तिकता प्रभृति प्रायः एक ही पर्यायवाचक शब्द हैं।

छान्दोग्योपनिषद्का सिद्धान्त है कि, 'नानितिष्ठन् श्रद्दधाति, निस्तिष्ठन्नेव श्रद्दधाति'। अर्थात् निष्ठारहित व्यक्ति श्रद्धा नहीं कर सकते, अपितु निष्ठावान् ही श्रद्धा कर सकते हैं। वस्तुतः किसी कार्यमें श्रद्धा सम्पन्न होकर रत होनेसे वह कार्य सिद्ध होकर रहेगा ही। अपनी श्रद्धाके ऊपर साधककी साधनाका सिद्धिलाभ निर्भर रहता है।

श्रद्धावित्तो भूत्वात्मन्येवात्मानं पश्येत्।

श्रद्धारूप धनका उपार्जन जिस अन्तःकरणमें होता है, वहाँ आत्माका दर्शन होता है।

श्रद्धा श्रद्धानात्।

जिससे सत्य (परमात्मा) का स्थापन (प्रादुर्भाव) होता है, वही श्रद्धा है।

श्रद्धया सत्यमाप्यते।

श्रद्धाके द्वारा सत्यरूप परमात्माकी प्राप्ति सम्भव है।

श्रद्दधदेव मनुते।

श्रद्धावान् ही मनन कर सकते हैं।

सा हि जननीव कल्याणी योगिनं पाति।

वे कल्याणकारिणी श्रद्धा ही जननीसदृश योगीकी रक्षा करती हैं।

श्रद्धार्जनके लिए वैदिक ऋषिगण त्रिसन्ध्या श्रद्धाकी साधना करते थे—

श्रद्धां प्रातर्हवामहे, श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह माम्॥ (ऋग्वेद १०।५।५)

वैदिक ऋषिगण प्रातः, मध्याह्न तथा सूर्यास्तके समय श्रद्धाका आवाहन करते थे, ताकि श्रद्धादेवीकी कृपासे उनका जीवन श्रद्धासम्पन्न हो।

सहजोबाई कहती हैं—

सहजो कारज जगत्के गुरु बिन पूरें नाहिं।
जगपति हरि तो क्या मिलें, समझ देख मन माहिं॥

गोपिकावतार मीरा कहती हैं—

सतगुरु जैसा बैद न कोई, पूछो बेद पुराना।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, अमर लोकमें रहना॥
छोड़ मत जाज्यो जी महाराज।
मैं अबला, बल नाहि, गुसाँई ! ए हो म्हारा सिरताज।
मैं गुणहीन, गुण नाहिं, गुँसाँई ! ए सिमरथ, महाराज॥
रावरी होयके किणरे जाऊँ, ये छो म्हारे हिवड़ेरो साज।
मीराके प्रभु और ना कोई, राखो अबकी लाज॥
मोहे लागी लटक गुरु चरननकी।
चरन बिना मोहे कछू न भावे,
जग माया सब सपननकी॥ १॥
भव-सागर सब सूख गयो है,
फिकर नहीं मोहे तरनकी।
मीराके प्रभु गिरधर नागर,
उलट भई मेरे नयननकी॥ २॥

पुस्तकालय

श्रुति भगवती कहती हैं कि—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

अर्थात् जिस साधकका ईश्वरमें पूर्ण अनुराग होता है और जैसी भक्ति ईश्वरमें होती है, वैसी ही गुरुमें भी होती है, उस साधकको कभी साधना बदलनी नहीं चाहिए। उसके लिए कहा है—

तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।

अर्थात् जिन साधकोंमें अटूट श्रद्धा है और गुरुमें ईश्वरभाव है, उनको जो साधना बतलायी जाती है, वह सिद्ध हुए बिना नहीं रहती।

अब श्रीभगवान्के लीलासम्भूत एक पावन घटनाकी ओर ध्यान आकृष्ट होता है। घटनास्थल धर्मक्षेत्र कुरुक्षेत्रका समराङ्गण है। समर-रथके सारथि बनते हैं—भगवान् स्वयं एवं रथी बनते हैं—नर-रत्न अर्जुन। यह एक अपूर्व घटना है। वे परम गुरु परमेश्वर श्रीकृष्ण लोकसंग्रहार्थ गुरुका अभिनय करते हैं और अर्जुन शिष्यका। उन गुरुके कण्ठसे अमृत-मय स्वरमें उद्भूत हुई वाणीपर ध्यान दीजिये—

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ (गीता ३।३१)

इस श्लोकमें भगवान् ईश्वरमें समर्पणपूर्वक वेदविहित शुभ कर्मोंके गुणका वर्णन करते हैं। 'जो कोई भी व्यक्ति दोषबुद्धिसे रहित और श्रद्धासे युक्त हुए सदा ही मेरे इस मतके अनुसार बर्तते हैं, वे पुरुष संपूर्ण कर्मोंसे छूट जाते हैं।'

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्।
सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः॥ (गीता० ३।३२)

और जो दोष-दृष्टिवाले मूर्खलोग इस मेरे मतके अनुसार नहीं बर्तते हैं, उन सम्पूर्ण ज्ञानोंमें मोहित चित्तवालोंको तू कल्याणसे भ्रष्ट हुआ ही जान।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥ (गीता० ४।३९)

अर्थात् श्रद्धावान् तत्पर (ज्ञाननिष्ठ) और जितेन्द्रिय पुरुष ज्ञानलाभ करते हैं। श्रद्धा ही ज्ञानलाभका सर्वोत्तम माध्यम है। यह कौन-ज्ञान है? ब्रह्मका याथात्म्यज्ञान आत्मा और परमात्मामें अभेदज्ञान—तत्त्वज्ञान है। इसके लाभसे साधक तत्क्षण आत्यन्तिक दुःखनिवृत्तिरूप परमा शान्ति (मुक्ति) प्राप्त करते हैं।

●

मननीय एवं गम्भीर अनुचिन्तन

भारतीय दर्शन-साहित्यपर श्रीकृष्णकी गीताका प्रभाव

वैद्यप्रवर श्रीकन्हैयालाल भेड़ा

★

भारतीय संस्कृत-साहित्यमें दर्शनोंका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये दर्शन-शास्त्र प्राणधारियोंकी कल्याण-कामनासे प्रणीत, सत्य एवं असत्यकी कसौटीरूप, दिव्य चक्षु हैं तथा तपःपूत, प्रवुद्धमति—व्युत्पन्न महर्षियोंके महार्घ प्रसाद हैं। दर्शनोंमें छः आस्तिक दर्शन और छः नास्तिक दर्शन प्रसिद्ध हैं—

> वेदप्रमाणकानीह प्रोचुर्यैं दर्शनानि षट्।
> न्यायवैशेषिकादीनि स्मृतास्त आस्तिकाऽभिधः ॥ १ ॥
> अवैदिकप्रमाणानां सिद्धान्तानाम्प्रदर्शकाः।
> चार्वाकाद्याः षड्विधास्ते ख्याता लोकेषु नास्तिकाः ॥ २ ॥

आस्तिक-दर्शन वैदिक तथा नास्तिक-दर्शन अवैदिक है, यह इनकी पारिभाषिक संज्ञा है। प्रायः सभी दर्शनोंके मूलग्रन्थ सूत्रात्मक हैं। भाष्य, वार्तिक, व्याख्या, उपव्याख्या, एवं स्वतन्त्र ग्रन्थोंके कारण दर्शनोंका साहित्य अत्यन्त विपुल हो गया था। कालक्रमसे कुछ दर्शन लोकप्रिय न होनेके कारण लुप्तप्राय भी हो गये, फिर भी सम्प्रदाय-विशेषकी वासना और अभिनिवेशके कारण बहुतसे दर्शन बच गये हैं। कुछ दर्शन, बुद्धिजीवियोंके लिए आकर्षक होनेके कारण, बिना सम्प्रदाय-क्रमके भी बच गये हैं। प्रायः सभी दर्शनोंके पूर्व ही श्रीमद्भगवद्गीताका आविर्भाव हो गया था। फलतः सब पर गीताका प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

यद्यपि 'ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव' गीतावाक्यसे बहुतसे आचार्य गीताको ब्रह्मसूत्र-निर्माणोत्तर ही मानते हैं, किन्तु शंकर भगवत्पादाचार्यने उसका अर्थ **'ब्रह्मसूचकं पदं सत्यं ज्ञानमनन्तम्'** इत्यादि ही किया है। इसके अतिरिक्त ब्रह्मसूत्रोंमें **'स्मृतेश्च प्रत्यक्षानुमानाभ्याम्'** इत्यादि सूत्रोंकी व्याख्यामें, प्रायः सभी आचार्योंने गीतास्मृतिको ग्रहण किया है।' **'कृत्वा भारतमाख्यानम्'** इत्यादि वैशम्पायन-वचनोंसे भी महाभारतकी रचना दर्शनोंसे पूर्व बतायी गयी है।

द्वादश दर्शनोंमें चार्वाक-दर्शनका मूलग्रन्थ आजकल देखनेमें नहीं आता, तथापि पूर्वपक्षके रूपमें अन्यग्रन्थोंमें उद्धृत अंशसे ही उसके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पृथ्वी, जल; तेज और वायु—ये चार भूत हैं। इनके मिलनेसे ही सारा जगत् उत्पन्न होता है। उनके संयोगविशेषसे ही प्राणियोंमें चेतनत्व आता है। विशेष संयोगान्तरसे ही ज्ञान-शक्ति एवं क्रियाशीलता पैदा होती है। प्रमाण प्रत्यक्ष ही है। जीव एवं ईश्वर परस्पर अलग तत्त्व नहीं हैं—इत्यादि चार्वाक-दर्शनके सिद्धान्त हैं।

चार्वाकदर्शनको लोकायतदर्शनके नामसे भी प्रसिद्धि है। इसके प्रतिपादक सूत्र भास्कर भाष्यमें इस प्रकार मिलते हैं—अथ लोकायतम्। पृथिव्यप्तेजोवायुरिति तत्त्वानि। तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा। तेभ्यश्चैतन्यं किण्वादिभ्यो मदशक्तिवद् विज्ञानम्। बृहस्पतिरचित सूत्रोंका उल्लेख प्राचीन दर्शन-ग्रन्थोंमें भी मिलता है। सूक्ष्म-विचार करने पर सिद्ध होता है कि 'भूमिरापोऽनलो वायुः' चार भूतोंका चुनाव चार्वाकोंने भगवद्गीताके आधार पर किया है। यदि यह उनके मस्तिष्ककी उपज होती तो वे आकाश, जीवात्मा, परमात्मा आदिका खण्डन न करते; क्योंकि जब उनके सामने आकाशादिका अस्तित्व ही नहीं था तो वे खण्डन किस बातका करते? दूसरी बात यह कि वृक्ष, लता, पत्थर आदिको 'पृथिवीत्वेन' रूपेण संगृहीत करनेका सिद्धान्त भी उनको गीता एवं मूल उपनिषदादिसे ही प्राप्त हुआ है। केवल चार्वाक-दर्शन पर ही नहीं, अपितु भारतीय समस्त दर्शनों पर सामान्य रूपसे यह प्रभाव देखा जाता है। प्रायः किसीने भी घृत-प्रभृति तरल पदार्थों तथा सुवर्णादि धातुओंको इन चतुर्भूत या पञ्चभूतोंसे पृथक् करनेका प्रयास नहीं किया है। जब कि आधुनिक वैज्ञानिकोंने लगभग एक शत तक पदार्थोंका अलग-अलग विश्लेषण किया है। एक शत या उनसे भी अधिक तत्त्वोंको किसी एक ढंगसे पाँच तत्त्वोंमें सर्वज्ञ भगवान्ने अन्तर्भाव किया था, जिसे आँख मूँदकर सभी दर्शनकारोंने अङ्गीकार किया है।

जैनदर्शन तथा बौद्धदर्शन पूर्णतया गीतासे प्रभावित हैं। केवल दर्शन ही नहीं, उनके पुराण, इतिहासादि भी गीतासे ही प्रभावित हैं। जैनोंके चौबीस तीर्थंकर तथा बौद्धोंके चौबीस बुद्ध चौबीस अवतारोंके ही प्रतिबिम्ब हैं। 'संभवामि युगे युगे'के बीजमें ही वह पल्लव, अंकुर, वृक्ष तथा पुष्पफलादि हैं। निरीश्वरवादी जैनों और बौद्धोंको भी 'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम्' 'सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः' इत्यादि वचनोंके अनुसार श्रीकृष्णके भगवद्भावोंको देखकर ही महावीर एवं बुद्धके लिए ईश्वर शब्द प्रयुक्त किये बिना ही, इन्हें ईश्वर माननेके लिए बाध्य होना पड़ा। और तो और, शून्यवादी भी, जो पहले असद्वादी कहलाते थे, असत् शब्दको छोड़कर शून्य शब्द लगाकर शून्यकी व्याख्या करने लगे। यह भी गीतोक्त 'न सत्तन्नासदुच्यते' के ही अनुसार है। बौद्ध न्यायशास्त्रज्ञ सुप्रसिद्ध दिङ्नागाचार्यने स्वविरचित प्रमाणसमुच्चय, प्रमाणसमुच्चयवृत्ति, न्यायप्रवेश आदि ग्रन्थोंमें शून्यका इसी प्रकार वर्णन किया है। 'ब्रह्मचर्यमहिंसा च शरीरं तप उच्यते' 'अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्। दया भूतेष्वलोलुप्त्वम्' इत्यादिका तो जैनों और बौद्धोंपर बहुत व्यापक प्रभाव पड़ा है। उन्होंने अपने दर्शनोंमें इन्हीं संपूर्ण साधनोंको मोक्षका साधन बताया है। आस्तिक दर्शनोंमें न्यायदर्शन एवं वैशेषिक-दर्शन, किसी मत या पन्थ-सम्प्रदाय पर आधारित नहीं हैं। बौद्धोंमें भिक्षु और जैनोंमें श्वेताम्बरादि क्षपणक उनके दर्शनके रक्षक माने जाते हैं।

न्याय एवं वैशेषिक दर्शनोंके रक्षक वर्गविशेष न होनेपर भी बुद्धिवादियोंके प्रिय होनेके कारण उनके साहित्यका अधिक विस्तार हुआ है। बुद्धिवादी होते हुए भी वे गीताके प्रभावसे वञ्चित नहीं रह सके हैं। गीताके 'न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते' 'ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।' 'ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधि-

गच्छति' इत्यादि गीताके वचनोंसे आश्रित होकर ही वैशेषिक सूत्रकार महर्षि कणादने 'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्नैश्रेयसाधिगमः' तथा न्यायसूत्रकार श्रीगौतम मुनिने 'प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः' इन सूत्रोंसे स्वकीय दर्शनोंका उपक्रम किया है। पञ्चभूत एवं ईश्वरवाद उन्होंने गीतासे ही प्राप्त किये हैं। 'क्षित्यङ्कुरादिकं सकर्तृकं कार्यत्वाद् घटवत्।' इस अनुमान-वाक्यसे नैयायिक एवं वैशेषिक ईश्वरकी सिद्धि करते हैं। परन्तु इस अर्थका मूल भी गीता एवं उपनिषद् ही हैं। बृहदारण्यक-भाष्यमें आचार्य शंकर भगवत्पादने भी इसपर उल्लेख किया है। उपर्युक्त तर्कसे नित्यज्ञानेच्छाकृतिमान् ईश्वरकी सिद्धि होती है। ईश्वरके शरीर तथा स्वरूपके सम्बन्धमें इनमें पर्याप्त मतभेद है। उदयनादि परमाणुको ही ईश्वरका शरीर मानते हैं। एवं अन्य ईश्वरको अशरीरी मानते हैं। 'न च शरीराजन्यत्वेन कर्मजन्यत्वसाधके न सत्प्रतिपक्षत्वम् अप्रयोजकत्वात्' इत्यादि जटिल तर्क उपस्थित करनेवाले न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीकारादिकोंने तो न जाने किस पराधीनतावश 'नूतनजलधररुचये गोपवधूटीदुकूलचौराय। तस्मै कृष्णाय नमः संसारमहीरुहस्य बीजाय' इस प्रकार गोपीचीर-चोरक भगवान्‌को प्रणाम किये हैं? 'विष्णोर्वक्षसि विश्वनाथकृतिना' इस पद्यमें न जाने किसके वक्षःस्थलको विश्वनाथ पञ्चानन भट्टाचार्य अपने संकल्पका विषय बना रहे थे? 'व्यक्तीकृतं चैतत् तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः' इस स्थलमें 'भगवता' कहते हुए 'गीताकी ही यह देन है', यह उन्होंने व्यक्त किया है। चिन्तामणिके अतिप्रसिद्ध टीकाकार श्रीरघुनाथ शिरोमणिने अनुमान-खण्डकी दीधिति व्याख्याके मङ्गलश्लोक 'ॐ नमः सर्वभूतानि विष्टभ्य परितिष्ठते। अखण्डानन्दबोधाय पूर्णाय परमात्मने'में गीताका पूर्णरूपेण अनुसरण किया है। 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत्' (१०।४२) इसीका भाव 'सर्वभूतानि विष्टभ्य परितिष्ठते' इस वाक्यमें व्यक्त किया गया है। गदाधर भट्टाचार्यने अपनी व्याख्या (गादाधरी)में 'यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः' (१५।१७) इस गीताका प्रमाण देकर उपर्युक्त दीधिति-पङ्क्तिकी व्याख्या की है। 'अखण्डानन्दबोधाय' यह पद तो 'यावानर्थ उदपाने सर्वतःसंप्लुतोदके' (२।४६) 'ज्ञानं ज्ञानवतामहम्' (१०।३८) इत्यादि वचनों पर ही आधारित हैं; क्योंकि न्यायसिद्धान्तमें ईश्वर आनन्दाख्य एवं बोध रूप नहीं है। न्यायधुरन्धर जगदीश भट्टाचार्यने 'कैशवं किमपि शैशवं महः' और गदाधर भट्टाचार्यने 'नत्वानन्दतनूजसुन्दरपदम्', 'नमस्तस्मै कस्मै चिदमृतचिदानन्दवपुषे' लिखते हुए गीतासिद्धान्तको ही न्याय पर लाद दिया है।

सांख्यदर्शन एवं योगदर्शन तो प्रायः गीतासे भरे हुए हैं। 'असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते' (६।३५) इस श्लोकको तो श्रीपतञ्जलि महर्षिने 'अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः' से सूचित किया है। 'न मां कर्माणि लिम्पन्ति' (४।१४) 'न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'

(९।२९) वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन। भविष्याणि च।' (७।२६) इत्यादि वाक्योंको मिलाकर 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः' (योग० १।२३) यह सूत्र बनाया। पुरुषविशेष शब्द भी 'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः' (१५।१७) इसी पर आधारित प्रतीत होता हैं। सांख्य और योगकी गुणत्रयात्मक प्रकृति 'सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्, महतोऽहङ्कारः' (सां० १।११)। 'सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः' इत्यादिसे बहुत ही मिलती-जुलती हैं। इनके 'तत्र सत्त्वं लघु प्रकाशकमिष्टमुपष्टमाकं च रजः' इस सांख्यकारिकामें कथित गुण 'तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयम्' (१४-६-७-८) इस गीता-कथनसे ही लिये गये हैं। विद्यारण्यस्वामीका कहना है कि 'आत्मभेदो जगत्सत्यमीशोऽन्य इति चेत् त्रयम्। त्यज्यते तैस्तदा सांख्ययोगवेदान्तसंमतिः।'

पूर्वमीमांसा कर्मप्रतिपादक श्रुतिवाक्यविचारात्मक है। यद्यपि बौद्धोंको परास्त करनेके लिए कुमारिल भट्टने ईश्वरका निराकरण किया। परन्तु स्वयं ही श्लोकवार्तिकके उपक्रममें—'विशुद्धज्ञानदेहाय त्रिवेदीदिव्यचक्षुषे। श्रेयःप्राप्तिनिमित्ताय नमः सोमार्धधारिणे।' इस मङ्गलाचरणसे शंकर भगवान्की स्तुति की। इस श्लोकमें ही व्याख्याताओंने सोमार्धका बालचन्द्र अर्थ न करके सोमरसार्ध अर्थ किया है। किन्तु यथा-श्रुतार्थका परित्याग उसमें स्पष्ट है । मीमांसा हि नाम-कर्मकाण्डप्रतिपादकश्रुतीनां मिथो विरोधपरिहारकारको ग्रन्थः। ईश्वर निराकरणके बाद भट्टमताचार्योंमें प्रकाण्ड-पण्डित भाट्टदीपिकाकार श्रीखण्डदेव तो व्याकुल हो जाते हैं और इस प्रकार ईश्वरका खण्डन करनेसे अपनी जिह्वाको भी दूषित हुई बतलाकर विलाप करने लगते हैं।

मीमांसान्यायप्रकाशकार आपोदेव तो निःसन्देह ही ईश्वरार्पण बुद्धिसे किये हुए कर्मोंका अन्तःकरण-शुद्धि आदि फल कहकर 'न च तत्र प्रमाणाभावः, यत्करोषि यदश्नासि इत्यादि गीतास्मृतेरेव प्रमाणत्वात् तस्याष्टकादिस्मृतिवत् प्रामाण्य-मित्यन्यत्र विस्तरः' इस तरह गीताको ही प्रमाणरूपसे प्रत्युपस्थापित किया है। इससे यह भी स्पष्ट है कि मीमांसापर भी गीताका पूर्ण प्रभाव पड़ा है। यही कारण हुआ कि वेदान्ती और मीमांसकोंमें अधिक वाद-विवाद नहीं रहा। शांकरमतमें भी 'व्यवहारे भाट्टनयः' से छुट्टी हो जाती है।

भारतीय दर्शनोंमें सर्वमुख्य वेदान्तदर्शन माना जाता है। सूत्रकार भगवान् वेदव्यासने तो गीताको स्मृतिरूपमें तत्र तत्र ग्रहण किया ही। अन्तमें प्रस्थानत्रयी ही वेदान्तके रूपमें प्रसिद्ध हो गयी। उपनिषद्, गीता और ब्रह्मसूत्र—ये तीन प्रस्थानत्रयी कहलाती हैं। प्रायः सभी प्राचीन मनीषियोंने प्रस्थानत्रयीपर भाष्य लिखकर ही आचार्यका गौरवपूर्ण पद प्राप्तकिया है।

•

एक संतका प्रसाद

आदर्शकी सीमा

मेरा तो बार-बार तुम्हारे लिए यही संदेश है कि भैया, होठोंपर स्मित और स्वरमें प्रभुके नामकी पुकार लिये हुए ही जीवनलीला समाप्त हो भला। और जब तक व्यवहार जगत्‌में रहो, तबतक सम्पूर्ण साहसके साथ अम्लान चित्तसे प्रत्येक विपत्तिमें प्रभुके परम मंगलमय करकमलोंका दर्शन करते हुए हंसते-हँसते उसका सामना करके चले जाओ। अनजानमें भी प्रभुके प्रति विश्वासका ऊँचा-से-ऊँचा परमाणु भरते चले जाना भी कम नहीं है, पर जीवनके आदर्शके लिए क्षेत्र इतना विस्तृत है कि जिसकी सीमा आजतक किसी भी महात्माने नापी ही नहीं।

जयति श्रीराधिके, सकल सुख साधिके, तरुणिमनि नित्य नव तन किशोरी।
कृष्णतन नीलघनरूपकी चातकी, कृष्णमुख हिम किरन की चकोरी॥
कृष्ण दृग भृंग विस्राम हित पद्मिनी कृष्ण दृग मृगज बंधन सुडोरी।
कृष्ण अनुराग मकरंद की मधुकरी कृष्ण गुनगान रस सिंधु बोरी॥
परम अद्भुत अलौकिक तेरी गति लखि मनसि साँवरे रंग अंग गोरी।
और आचरज मैं कहूँ न देख्यो सुन्यो, चतुर चौंसठ कला तदपि भोरी॥
विमुख परचित्त ते चित्त जाको सदा करत निज नाह की चित्त चोरी।
प्रकृत यह गदाधर कहत कैसे बने अमित महिमा इते बुद्धि थोरी॥

(छप्पन पद संख्या ८)

सम्पूर्ण सुखोंको प्रस्तुत करनेवाली, युवतीगणोंमें रत्नरूपा एवं नित्य नवीन कैशोरसे युक्त अंगोंवाली श्रीराधाकी जय हो। वे श्रीकृष्णचन्द्रके श्याम कलेवररूपी बदलीके लिए चातकीरूपा हैं और श्रीकृष्णके मुखचन्द्रके प्रति वैसे ही आसक्त हैं, जैसे चन्द्रमाके प्रति चकोरी। श्रीकृष्णके नेत्ररूपी भौरोंको भी इन राधारूप पद्मिनीके ऊपर ही स्थित होकर विश्राम मिलता है। वे मानो रेशमकी ऐसी सुन्दर डोरी हैं जो श्रीकृष्णके नयनमृगोंको बाँध लेती हैं। वे श्रीकृष्णप्रेमरूपी मकरन्दका भ्रमरीकी भाँति पान करती रहती है। और श्रीकृष्णके गुणोंके कीर्तनसे जो रस प्रवाहित होता है, उसके समुद्रमें सदा डूबी रहती हैं। उनकी यह अद्भुत और अलौकिक लीला देखो तो सही। गोरे तनके भीतर मनमें साँवला रंग भरा हुआ है और ऐसा आश्चर्य तो मैंने कहीं देखा न सुना कि चौंसठों कलाओंमें निपुण होते हुए भी वे नितान्त भोली ही हैं। जिनका चित्त कभी दूसरोंकी ओर आकृष्ट नहीं होता, ऐसे अपने स्वामी श्रीकृष्णके चित्तका सदैव हरण किये रहती हैं। उधर उनकी महिमा तो अपार है और इधर मेरी बुद्धि अत्यन्त अल्प है। गदाधरजी कहते हैं कि फिर इनके वास्तविक स्वरूपका वर्णन कैसे हो सकता है।

●

श्रीकृष्ण सहज ही प्रेमके वशीभूत होनेवाले हैं।

सूरके कृष्ण

श्री हरीशंकर पाण्डेय

★

श्रीकृष्ण सूर-काव्यके नायक एवं उनके इष्टदेव हैं। उनकी अपनी अनेक विशेषताएँ हैं। भक्तजन जिस रूपमें उन्हें भजते हैं, वे उसी रूपमें उन्हें प्राप्त होते हैं। वे अन्तर्यामी हैं, अनादि तथा अनन्त हैं। वे इस महीपर असुरोंके संहार, सत्पुरुषोंकी रक्षा तथा धर्मकी स्थापनाके हेतु नर-लीला करनेके लिए अवतरित हुए हैं। तभी तो—

ताहि अहीरकी छोहरियाँ छछिया भर छाछ पर नाच नचावैं।

श्रीकृष्णका चरित्र सूरदासजीने भागवत-पुराणसे लिया है। पुष्टिमार्गके संस्थापक स्वामी वल्लभाचार्यजीने अपनी प्रतिभाके अनुसार इसमें केवल थोड़े-बहुत परिवर्तन कर दिए हैं। उनके अनुसार श्रीकृष्ण इस संसारके पालक, उत्पत्तिकर्ता एवं लय करनेवाले हैं। वे सच्चिदानन्द तथा पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हैं। भक्तोंकी रक्षा करना इनका परम कर्तव्य है। स्वामीजीके आदेशसे, इन भावनाओंसे प्रेरित होकर सूरदासजी उनकी लीलागान करने लगे।

श्रीकृष्णको सगुण रूपमें वर्णित करते हुए सूरदासजीने इन्हें सर्वज्ञ, अन्तर्यामी और अविनाशीके रूपमें चित्रित किया है। इन्होंने अनेक मानवोत्तर कार्य किये हैं—गोवर्धन-धारण करते हैं तो लोगोंको सहायताके लिए बुलाते हैं, काली नागके प्रसंगमें लोग इनके लिए चिन्तित हो उठते हैं। गोपियोंके रासमें भी ये पूर्ण मानव ही हैं। इस प्रकार स्पष्ट रूपसे हम यह कह सकते हैं कि ये मानवके साथ ही साथ पूर्ण सामाजिक भी थे। यह तो रहा सूरका सगुण पक्ष। इसके अनन्तर गन्धर्वगणों द्वारा वे उनके निर्गुण रूपकी उपासना करवा-कर निर्गुण ब्रह्मकी भी प्रतिष्ठापना करते हैं। सूरके अनुसार श्रीकृष्ण हैं तो परब्रह्म परमेश्वर, किन्तु अपने भक्तोंका दुःख दूर करनेके लिए इन्होंने सगुण रूप धारण कर रखा है। उनके गुणोंकी व्याख्या पूर्णतः वर्णनके परे है—

अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यो गूंगा मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै॥

× × ×

सब विधि अगम विचारिहि ताते सूर सगुन लीलापद गावै॥

सूरदास जी ने अपने उपास्य-देवको दास्य, वात्सल्य, सख्य एवं माधुर्य-भावसे ओत-प्रोत होकर भजा है। उनका मंगलाचरण ही इस बातका द्योतक है—

चरन कमल वन्दौं हरिराई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै अन्धे को सब कुछ दरसाई॥
बहिरो सुने मूक पुनि बोले, रंक चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुनामय बार-बार बन्दौ तिहि पाई॥

बादमें अपने आराध्यदेवको अपने निकट लानेके लिए उनकी रचनाओंमें सख्य भावकी प्रधानता है, क्योंकि किसी भी व्यक्तिके गुणोंके वर्णन हेतु उसके निकट आना नितान्त आवश्यक है। यही कारण है कि सूरदास जीने अपने आराध्यदेवको विविध गुणोंसे अनुरंजित देखकर उनके जीवनके प्रत्येक चरणका वर्णन किया है। उन्होंने उनकी लीलाओंको अत्यन्त ही निकटसे देखा है। श्रीकृष्ण खेलने जाते हैं, पर खेल में तो सभी बराबर हैं, चांहे वे राजा हों अथवा रंक। तभी तो सूरदास जी एक सखासे कहलवाते हैं—

खेलन मैं को काको गुसैंया।
हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैया।
जाति-पाँति हमतै बड़ नाहीं नाहीं बसत तुम्हारी छैया।
× × ×
सूरदास प्रभु खेलो चाहत दाव दियो करि नंद दुहैया॥

एक सखाके नाते सूरदास उनके इतने निकट पहुँच जाते हैं कि उनकी रहस्य-लीलाका वर्णन करनेमें भी हिचकिचाते नहीं। बालक श्रीकृष्णके बाल-वर्णनके एक प्रसंगमें वे कहते हैं—

जसोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै, दुलरावै, मल्हावै जोइ सोई कछु गावै।
× × ×
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रहि करि-करि सैन बतावै॥
इहि अंतर अकुलाइ उठे हरि जसुमति मधुरे गावै।

वैसे इन वर्णनोंके अतिरिक्त सूरके कृष्ण माधुर्य-भावसे परिपूर्ण हैं। राधा तथा गोपियोंके पारस्परिक स्नेहमें माधुर्य-भाव अत्यन्त ही मुखरित हुआ है। प्रेम तो ऐसा भाव है जो कम या अधिक सभीमें पाया जाता है। यही लौकिक प्रेम यदि अलौकिकताकी ओर उन्मुख हो जाय तो भक्तकी भक्ति सफल हो जाय। अतः इस दिशामें सूरदास जी बहुत अग्रगण्य हैं। गोपियोंसे श्रीकृष्णका प्रेम हमें अलौकिकताकी ओर सहज ही आकृष्ट कर लेता है।

श्रीकृष्ण एवं गोपियोंका प्रेम अत्यन्त ही पवित्र है। ईश्वरको प्राप्त करनेके लिए भक्तको अनेक संकटोंका सामना करना पड़ता हैं। यहाँ पर भी श्रीकृष्ण ईश्वर और गोपियाँ भक्त हैं। भक्तोंकी परीक्षा हेतु श्रीकृष्ण व्रज छोड़कर द्वारिका चले जाते हैं। वे गोपियाँ जो श्रीकृष्णको एक क्षण भी नहीं छोड़ती थीं, तथा उनकी मुरलीकी धुनपर सामाजिक बंधनों एवं मर्यादाओंको त्यागकर पहुँच जाती थीं, वे ही गोपियाँ आज श्रीकृष्णके वियोगरूपी अग्निमें

जल रही हैं। आनेको कौन कहे वे संदेशा भी नहीं भेजते। उनके विरहमें सारा ब्रज दुखित है—गायें तृण नहीं खा रही हैं, बछड़े दूध नहीं पी रहे हैं, सभी वनोंमें कृष्णको ढूँढ रहे हैं। गोपियाँ तो व्यथित होकर यहाँ तक कह डालती हैं—

प्रीति कर काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सौं आपन प्रान दह्यौ।

× × ×

हम जो प्रीति करी माधव सौं चलत न कछू कह्यौ।

उद्धव, श्रीकृष्णके दूत बनकर ब्रजमें आते हैं। विरह सागरमें डूबी हुई गोपियोंको सहारा मिलता है। श्रीकृष्णका संदेशा वे सुनने आती हैं, पर यहाँ तो उद्धवके मनमें कुछ और ही बात है। वे निर्गुण ब्रह्मकी शिक्षा देने आये हैं। गोपियाँ अत्यन्त ही क्रुद्ध हो जाती हैं। उनमें-से एक तो व्यंग्यसे यह भी कहती हैं—

निरगुन कौन देस कौ वासी।
मधुकर कहि समुझाइ सौंह दै, बूझति साँच न हाँसी।
को है जनक, जननि को, कहियत कौन नारि कौ दासी।

× × ×

सुनत मौन ह्वै रह्यौ ठगो सो सूर सबै मति नासी।

यह तो रहा गोपियोंका विरह। उधर श्रीकृष्ण जी भी सुखमें नहीं है। उन्हें ब्रज भूल नहीं रहा है। रह-रहकर याद सताती है। तभी तो वे उद्धवसे कहते हैं—

ऊधौ मोहि ब्रज बिसरत नाहीं।
हंस सुता की सुन्दर कगरी अरु कुंजन की छाहीं।
वे सुरभी, वे बच्छ दोहनी, खिरक दुहावन जाहीं।
ग्वाल, बाल सब करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाँहीं।

× × ×

इस प्रकार हम स्पष्ट रूपसे कह सकते हैं कि सूरदास जीने अपने उपास्यदेव श्रीकृष्णको अत्यन्त निकटसे देखा है। इसीलिए उन्होंने उनके विविध गुणोंकी व्याख्या की है। सूरने अपने कृष्णको एक चंचल किशोर, मुखरित बालक, आदर्शप्रेमी, क्रीड़ा-कौतुकप्रिय एवं आदर्श नायकके रूपमें चित्रित किया है। उनके श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं तथापि अनेक मानवीय तथा आश्चर्यजनक कार्य करके भक्तोंको प्रसन्न करनेवाले हैं। वे अत्यन्त ही गम्भीर तथा सहज ही प्रेमके वशीभूत होनेवाले हैं—ऐसी विशेषताओंसे विभूषित हैं ये सूरके श्रीकृष्ण।

●

भक्तशिरोमणि महाकवि सूरदासजीकी पावन जयन्तीपर—

सूर-सप्तक

(१)

स्वयं सूर*-सागर प्रकट, यहि भू-मण्डल-बीच।
जो डूबो सो पार भो, तज कें कलिमल कीच।

(२)

सूर[1] उदित तम दूर भो, सूर[2] उदित तम दूर।
वह तो अंशु सहस्र को, कोटि अंशु यह नूर।

(३)

कौ न मानत सूर[3] को, या धरती को सूर[4]।
वह दुःख दे जब बहु तपत, यह सुखनिधि भरपूर।

(४)

सब सूरन में सूर[5] यह, भक्त शिरोमणि सूर[6]।
सूर श्याम बाँध्यो दृगन, भगन न पायो दूर।

(५)

जे आँखें सब सूर[7] हैं, नहीं प्रेम को सूर[8]।
वे दो आँखें सूर[9] नहिं, बस्यो श्याम बन सूर[10]।

(६)

एक सूर[11] के नाम पर, माँगत लाखन सूर[12]।
सूरदास कहलावते, खावत मोतीचूर।

(७)

"मधुप" स्याम-स्यामा, सुहृद, अजहुँ रहे तुम डोल।
दूर करो जग को तिमिर, दिव्य चक्षु दो खोल।

—*जगदीशशरण 'मधुप'*

विशेष—पुष्पांकित शब्द, सूर*-सागरका अर्थ पाठक इस प्रकार लगावें। सूर-सागर स्वयं प्रकट है, अथवा सूरदासजी सागरके रूपमें प्रकट हैं। (१) सूर=सूर्य। (२) सूर=सूरदासजी। (३) सूर=सूरदासजी। (४) सूर=सूर्य। (५) सूर=शूरवीर। (६) सूर=सूरदासजी। (७) सूर=अंधी। (८) सूर=दर्द (शूल) (९) सूर=अंधी। (१०) सूर=अंधी, अथवा सूर्य। (११) सूर=सूरदासजी। (१२) सूर-अंधे। सुहृद=मित्र एवं सुन्दर हृदय।

पुस्तकालय

वाह्य और आभ्यन्तरकी शुद्धिका साधन—

आचमन

डॉ० श्री अशोक शास्त्री

★

आचमनका प्रधान उद्देश्य है देह और मनको पवित्र करना। इसलिए सभी प्रकारके पूजन एवं अर्चनके पहले ऋषियोंने आचमनका विधान किया है। सर्वोत्कृष्ट परम पवित्र अत्यन्त निर्मल उज्ज्वल और चित्तको प्रसन्न करनेवाली वस्तुओं द्वारा हम देवताराधन करते हैं। किन्तु पूजन और आराधनमें जितनी वस्तुओंका भी हम आयोजन करें, यदि पूजक उस पूजनका प्रधानतम एवं घनिष्ठ अङ्ग न हो जाय, तो सभी पूजन व्यर्थ हो जाता है। सहस्रोपचार पूजा भी निष्फल हो जाती है यदि पुजारी अपनेको अनन्यमनसे देवताके चरणारविन्दमें निवेदित नहीं कर पाता। इसलिए पूजाकी सफलता एवं सिद्धिके लिए अर्चकका आत्मनिवेदन नितान्त आवश्यक है। सुगन्धित पुष्प पवित्र गङ्गाजल, सुन्दर धूप-दीप, उत्कृष्ट नैवेद्य—इन सब देवभोग्य उपकरणोंसे कभी पूजाकी सिद्धि नहीं होती। वस्तुतस्तु पूजाका विशिष्ट उपकरण प्रार्थनीय फलका मूल्य नहीं है। अर्चक एवं देवतामें परस्पर क्रेता-विक्रेताका सम्बन्ध नहीं होता। महार्घ द्रव्योंद्वारा अर्चित होनेपर देवता सन्तुष्ट होंगे और उससे हमारा काम्य पूर्ण होगा, ऐसी धारणा अर्चकके लिए नितान्त भ्रमपूर्ण है। विक्रेता या दूकानदारको कभी-कभी पैसेका अभाव होता है। इसीलिए वह पैसेके लिए अपना द्रव्यसम्भार क्रेताको दे देता है। किंतु भगवान्‌को किस वस्तुका अभाव है? भगवान्‌के पास क्या नहीं है जो अर्चक उन्हें देकर अपनी अभीष्ट सिद्धि करेगा। यदि भगवान्‌को द्रव्यादि घूस देकर अभीष्ट लाभका प्रयास ही पूजा है तो उस पूजाकी तरह निरर्थक अपचेष्टा और कुछ नहीं हो सकती।

पूजाका प्रधान उद्देश्य और सार्थकता आत्मनिवेदनमें है। मिथिलाके भक्त कवि-विद्यापतिने कहा है—"देह तुलसितिल देह समर्पलूँ दया जनि छोड़बि मोय" यही है पूजाकी मूल कथा। किन्तु यह देखना चाहिए कि देवताके उद्देश्यसे जो चीज दी जाये वह निर्मल एवं शुद्ध होनी चाहिए। इसलिए पूजामें आत्मनिवेदन करनेके पहले अपनी आत्माको निर्मल करना अति आवश्यक है। आचमन द्वारा यही आत्मशुद्धि संभव होती है।

आचमनका लक्ष्य है शरीर एवं मनकी उभयविध शुद्धि। शरीरके प्रधान अङ्गोंमें जलद्वारा प्रोक्षण करके हम शारीरिक शुद्धि करते हैं। प्रथमतः गोकर्ण-मुद्रामें हथेलीपर कण्ठके

भीतर तक पहुँच सके इतना जल लेकर विष्णुस्मरणपूर्वक पान करना चाहिए। अनामिका-मध्यमा और तर्जनी अंगुलीको एक साथ मिलाकर ऊपर उठाकर कनिष्ठा एवं अंगुष्ठ अलग करके नीचेको झुकानेपर गोकर्ण-मुद्रा बनती है। गोकर्ण-मुद्रा बनाकर गदेलीमें जल लेकर पीना चाहिए। तत्पश्चात् ओष्ठमार्जन एवं हस्त-प्रक्षालन करना चाहिए। इसके बाद दोनों नासापुट, चक्षुर्द्वय, कर्णद्वय एवं नाभिमूलका स्पर्श करे। पुनः हस्त-प्रक्षालनपूर्वक ब्रह्मरन्ध्र, दक्षिण स्कन्ध एवं वाम स्कन्धका स्पर्श करना चाहिए। शरीरके भीतर जो मल उत्पन्न होता है उसके निकलनेके लिए शरीरमें नव-द्वार हैं। मल द्वार एवं मूत्रद्वारको छोड़कर अवशिष्ट सात द्वारोंका जलसहित स्पर्श करना आचमनका विशिष्ट अङ्ग है। दो नासापुट, दो नेत्र, दो कर्ण एवं मुख—ये ही सात द्वार हैं। वर्तमान वैज्ञानिक युगमें भी सुस्वास्थ्यके लिए शरीरके इन सात स्थानोंका प्रक्षालन आवश्यक माना गया है। जर्मनके एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा चिकित्सक इन सप्त द्वारों अथवा नव-द्वारोंकी सफाईसे सभी रोग नष्ट हो जाते हैं, ऐसा कहा है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष महाभूतोंके संगम नाभि-मूलसे ही आराधनाका राज्य शुरू होता है। नाभिदेशका अधोभाग, भोगका—ऐहिक सुखका राज्य है। उसके ऊर्ध्व-भागसे ही पारमार्थिक राज्यका प्रारम्भ होता है। इसलिए आचमनद्वारा पूजाके प्रारम्भमें नाभिसे ब्रह्मरन्ध्र तक ध्यान-राज्यकी प्राथमिक सीमा मानी जाती है।

मनुष्यकी कर्मेन्द्रियोंमें सबसे प्रधान हाथ हैं। इसलिए हाथ और शरीरके संयोग-स्थल (स्कन्ध) को पवित्र किया जाता है। इसका कारण और कुछ नहीं, केवल हाथ द्वारा नियोजित द्रव्य पवित्र करना ही इसका उद्देश्य है।

शरीर-शुद्धिके लिए जल ही सर्वापेक्षया प्रधान साधन है यह तो प्रत्यक्ष ही है। इसलिए सन्धि-स्थलोंमें जलमार्जन द्वारा शरीरका पवित्रीकरण ही आचमनका प्रधान कार्य है। किन्तु आमचनके परवर्ती प्रधान कार्योंमें मनकी पवित्रताका साधन भी है। इसलिए विष्णुस्मरणकी व्यवस्था की गयी है। आचमनका मन्त्र है—

"तद् विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्।"

'पण्डितजन आकाशमें विस्तृत नेत्र-सदृश विष्णुके परम पदका सर्वदा अवलोकन करते हैं।' अनावृत आकाशकी दिगन्त-विस्तृत पटभूमिमें जिन-जिन वस्तुओंका अवस्थान है उन सभीका स्वेच्छया दर्शन होता है। समतल पृथ्वीके किसी न किसी स्थानमें जो वस्तुएँ रहती हैं, वे सभी वृक्ष-गृहादिसे व्यवहित होनेके कारण दृष्टिपथमें नहीं आ पातीं। किन्तु अनावृत आकाशमें विद्यमान विष्णुका परमपद हम लोगोंकी दृष्टिका विषय निरन्तर निर्बाध है। वही परम पद विस्तृत चक्षुसदृश होता है। चक्षु दीप्ति है। अतः इसका स्वतः प्रकाश सिद्ध है। अर्थात् विष्णुका परम पद अपनी ज्योतिसे उद्‌भासित होकर अपनेको ही स्वतः प्रकाशित कर रहा है। इस परमपदके दर्शनके लिए साधकके लिए अपनी इन्द्रियको छोड़ दूसरा कोई साधन अपेक्षित नहीं होता। इसके अतिरिक्त विष्णुका परमपद चक्षुसदृश होनेके नाते यही प्रतीत होता है कि वह गोलाकार है। जो वस्तु चतुष्कोणाकार होती है, उसे विभिन्न दृष्टिकोणसे देखनेपर उसके विभिन्न स्वरूपकी प्रतीति होती है। इसमें इसके निजी

रूप या आकारके बारेमें कोई निश्चित धारणा नहीं बन पाती है। किन्तु विष्णुका परमपद गोलाकार हैं, इसलिए सब जगहसे इसका एक ही रूप प्रतीत होता है। विष्णुके इस भास्वर अनावृत अपक्षपात परमपदका साधु व्यक्ति निरन्तर दर्शन करते हैं। आचमन-मन्त्रमें इस मन्त्रके पाठका तात्पर्य यही है कि संसारमें सभी कामना और कामनापूर्ति स्थायी नहीं, अपितु सामयिक हैं। अवस्था-विशेषमें कोई किसीके लिए कल्याणकर होता है तथा किसीके लिए अकल्याणकर। जगत्के पदार्थ ध्वंसशील और क्षणभंगुर होनेके नाते किसीका निरन्तर कल्याण नहीं कर पाते। संसारमें केवल विष्णुका परमपद ही साधकोंके इहकाल तथा परकालका नित्य आश्रय है। यह हमलोगोंके पथ-प्रदर्शनके लिए, कल्याणसाधनके लिए निरन्तर विद्यमान रहता है। इसलिए कल्याणकामीके लिए और सब छोड़कर विष्णुके परमपदमें मनोनिवेश करना उचित है।

बाहरके मल जैसे शरीरको क्लिन्न करते हैं वैसे ही संसारकी कामना-वासना भी मनको अपवित्र करती हैं। जलसे जैसे बाहरका मल धुल जाता है वैसे ही विष्णुचिन्तनसे, उनके परमपदके ध्यानसे मनुष्यकी आपातमनोरम कामना—वासना दूर हो जाती है। मनुष्य निर्मल तथा पवित्र बनता और देवार्चनके योग्य होता है।

●

शंकरजयन्तीके उपलक्ष्यमें—

वेदान्तदर्शन : एक विचार

आचार्य पं० उत्तमराम शुक्ल

वेदान्तदर्शनकी उत्पत्ति उपनिषदोंके द्वारा हुई है। उपनिषदोंमें वैदिक विचार-धाराका चरमविकास किया गया है। इसलिए उपनिषदोंको ही हम वेदान्त कहें तो वह सत्य होगा। वेदान्तदर्शनोंमें जो उत्तरोत्तर विकास पाया जाता है; उसमें जितने भी मूल सिद्धान्त प्राप्त होते हैं; वे सभी उपनिषदोंमें प्राप्त हैं। भगवान् वेदव्यासने उन्हीं वैदिक सिद्धान्तोंको अपने 'ब्रह्मसूत्र'में संकलित किया है। उसके पश्चात् अनेक भाष्यकारोंने उन सूत्रोंके मूल सिद्धान्तोंको लेकर अनेक भाष्य लिखे हैं उन भाष्योंमें शांकरभाष्य अधिक विख्यात है।

ऋग्वेदके पुरुषसूक्तमें एक ऐसे पुरुषका वर्णन है जो समस्त ब्रह्माण्डमें व्यापक है और ब्रह्माण्डसे अतीत भी। इस सूक्तमें सारे जड़-चेतन पदार्थों, मनुष्य तथा देवगणों आदि सभीको उस परमपुरुषका अंग माना है, अंश माना है। इसी भावको उपनिषदोंने पूर्णतया विकसित किया है।

●

श्रीराधा-चरणोंकी शरणागतिसे विश्वका कल्याण—

श्रीराधा किशोरी

[स्वरूप और साधना]

श्रीगोकुलानन्द तैलंग

★

प्रेमलक्षणा भक्तिकी परम आराधिका, स्नेह-साधिका श्रीराधिका हैं मधुरातिमधुर 'गोपीभाव,'''' महाभावकी अनुपम महनीय मूर्ति, नव-नव-अनुरागोन्मेष-शालिनी व्रज-सुन्दरियोंकी शिरोमौलि, चिन्मय चिरन्तन प्रेमकी पावन प्रतिमा।

स्नेह-साधना, श्यामसुन्दरके पुनीत पादपद्मोंमें जिनकी सहज रागात्मिका वृत्ति, मधुर भावके प्रतिदानकी अनुपल आकांक्षिणी हैं, ऐसी श्रीराधा''''सुन्दर श्यामकी श्यामा, परमाभिरामा वृषभानुलली, तन्मनस्कातदालापा, तद्रूपरूपिणी श्रीराधा।

एक रूप, एक रस, एक रति''''अनन्य अहैतुकी रति। नन्दनन्दन मनमोहनके प्रति अनवरत आसक्ति जिनके जीवनका परम व्रत, मधुर संकल्प। संयोगमें, विप्रयोगमें : योगमें, भोगमें जो एकमेव श्यामसुन्दरको ही लेकर रखती हैं अविकल निष्ठा''''एकतानता।

'रस' ही 'राधा'। राधा ही रस। दोनों एक ही तत्त्व, परमतत्त्वके पर्याय''''दोनोंके हैं नित्य सम्बन्ध—समवाय।

सघन, संकुल, वेलि-वल्लरी-वेष्टित, सुर-नर-मुनि-दुर्लभ व्रजरज-स्नात निबिड निकुञ्ज, मधु-माधवी-लता-वितान-विमण्डित व्रज, वृन्दावन जिनकी साधना-स्थली, प्रेमाराधना-स्थली, धीरसमीरे, यमुनातीरे रस-विहारमें जहाँ निरत हैं व्रज-वनमाली।

कल-कल-निनादिनी, रस-कल्लोलिनी कालिन्दीके अविरल प्रवाहमें जो माधवकी विश्वविमोहिनी वंशीकी परमाह्लादिनी स्वर-गुंजना है, वही तो श्रीराधाके हृदय-संगीतकी सरस अभिव्यञ्जना है। श्रीराधाकिशोरीके अन्तस्तलमें, यमुनाकी तरल, सजल ऊर्म्मियोंमें, मोहनकी मधुर बाँसुरीके मंजुल सप्त स्वरोंमें वही रस''''वही राग'''वही रंजना। तीनोंमें वही सम्मोहन, वही आकर्षण, वही अनुबन्धन''''

परम रस-चातुरीको नेह-नायिका, रस-विधायिका राधिकाके प्रेमका प्रोज्ज्वल प्रतिमान, भव्य, दिव्य रस, रागका पुण्य प्रतिष्ठान युग-युगतक प्रेमियों, नेमियोंको पवित्र प्रेरणा, पुण्य चेतना देनेमें समर्थ है।

जिनका चरित्र-चित्र अपने आपमें ही काव्य है, कितने ही भावना-प्रवण, कान्त-कल्पनाके धनी कवियोंको 'रससिद्ध' कवीश्वर बना देनेमें सक्षम है''''उन श्रीराधा किशोरीकी पलभरकी भी संस्मृति है अतुल-अतुल, रस-निधिकी समुपलब्धि, संवृद्धि, ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि।

ऐसी हैं, श्रीराधा नागरी''''अगाधा भव-बाधा-निवारिणी, सकल कलि-कलुष-विदारिणी।

अनित्य भौतिक प्रेम,....वासनामूलक नश्वर प्रेम....जलवुद्‌वुद्‌वत्‌ मोह-मूलक क्षणिक प्रेमके आवेगको जिनका अनुचिन्तन निवृत्त करता है, चिरन्तन सत्य, सनातन प्रेम, मधुर रस-भक्तिका दान करता है, ऐसी हैं श्रीराधा—

'जा तनकी झाँई परे स्याम हरित दुति होइ।'

फिर सामान्य जीवकी परम निःश्रेयस-सिद्धि, परम कल्याण-समृद्धि तो सुनिश्चित है, एक ध्रुव सत्य, अटल सत्य है।

उन श्रीराधा किशोरीका रस सरसानेवाले बरसानेमें पुण्य प्रादुर्भाव हुआ है, व्रज-भक्तोंको महान्‌ सौभाग्य, अनन्त स्नेह, श्री, सुषमाकी समुपलब्धिका अनुपम अवसर देनेके लिए।

श्रीराधाका जन्म-महोत्सव, प्रेम, दिव्य प्रेमका महोत्सव है। श्रीराधाने जिस क्षण व्रजभूमिमें अवतार लिया, वह क्षण व्रज-भक्तों, अखिल मानव-प्रेमके अनुरागियोंके जीवन-संकल्पका क्षण है।

श्रीवृषभानुनन्दिनी, कीर्त्तिकुमारी राधा निखिल विश्वके समक्ष एक मधुर प्रेम.... मानव-मानवके प्रति प्रेम....पशु-पंछी—प्राणिमात्रके प्रति प्रेम....जड़-जंगम—यावन्मात्र सृष्टिके प्रति प्रेम, शुद्ध प्रेम, केवल प्रेम, अहैतुक निःस्वार्थ प्रेमका चरम आदर्श प्रतिष्ठापित कर रही हैं।

उनके श्रीचरणोंमें विनत, समर्पित-भावसे आइये, आपको प्रेमका प्रतिदान....भक्तिका अनुदान और आत्म-कल्याणका उपादान मिलेगा।

श्रीराधाकी माधवके प्रति सतत अनुरक्ति, स्नेह, सेवा, समर्पणकी सन्तत अभिव्यक्ति मानवके अन्तर बाह्य, लोक, परलोक सभीका कल्याण करेगी....आत्म-कल्याण, मानव-कल्याण, राष्ट्र-कल्याण, विश्व-कल्याण।

श्रीराधा किशोरीके आविर्भावका यही लक्ष्य....उनके जन्मदिन पर रखे जानेवाले व्रतका यही हेतु, यही विधि और यही माहात्म्य है....यही उनके पूजनको सामग्री है....यही श्रीराधा-किशोरीके प्राकट्य-महोत्सवकी महिमा, गरिमा है।

वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्‌गीतं पुनाति भुवनत्रयम्‌॥

ज्ञान-योगकी विडम्बनासे मुक्त, परमगोपीभावासक्त...परमभक्त श्रीउद्धवने उन्हीं श्रीराधा....नन्द-व्रजस्त्रियोंकी अग्रगण्य प्रतिनिधि श्रीराधाकी ही तो इन पंक्तियोंमें वन्दना की है! उनके पादरेणुकी कामना और भुवनत्रयको पुनीत करनेवाले 'हरिकथोद्‌गीत' की अर्चना की है।

यहींसे प्रेरणा पाकर, अन्तमें श्रीशुकमुनिकी पुण्य वाणीमें ही उनके उद्‌गार उनके संवेदनशील सरस हृदयकी अभ्यर्थना देख लें।

आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्‌।
या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्‌॥

●

५

श्रीकृष्ण आत्मस्वरूप प्रियतम हैं।

माधुर्य-भक्तिरस

श्रीरामलाल बी० ए०

★

पाँचवाँ मधुर भक्तिरस है। इस रसके अनेक नाम हैं—उज्ज्वलरस, शुचिरस, कान्तारस तथा शृंगाररस। श्रीरूपगोस्वामीने इसको भक्तिरसराज कहा है। उनका कथन है :

मुख्यरसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितातिरहस्यत्वाद्।
पृथगेव भक्तिरसराट् सविस्तरेणोच्यतेऽत्र मधुरः॥

(उज्ज्वलनीलमणि-नायकभेद। २)

इस मधुर रसके विषयालम्बन श्रीकृष्ण हैं। सुरम्य, मधुर, समस्त सल्लक्षणविशिष्ट, बलिष्ठ, नवतारुण्यविशिष्ट, प्रियभाषी, सुधी, धीर, विदग्ध, प्रतिभान्वित, सुखी, कृतज्ञ, प्रेमवश्य, गाम्भीर्यसमुद्र, नित्यनवीन, प्रियतम, वंशीवादनरत आदि श्रीकृष्णकी गुणावली हैं।

प्राकृत रसकोविदोंने शृंगाररसमें बहु नायिका-नायक स्वीकार किये हैं पर वैष्णवाचार्योंने मधुररसके विषयालम्बन रूपमें एकमात्र श्रीकृष्णको ही स्वीकार किया है। मधुर भक्तिरसमें नायक-भेदके लिए स्थान ही नहीं है। एक ही जनके अनेक भेद सम्भव ही नहीं हैं, पर श्रीकृष्ण एक और अद्वितीय होकर भी गुण क्रिया-भेदसे अनेक भेदवाले हैं; उनके अनन्त गुण और अनेक क्रियाएँ हैं; उनकी लीला और कर्म दिव्य हैं। सारे गुणों और समस्त लीलाओंका एक साथ प्रकट होना सम्भव नहीं है। प्रयोजनके अनुसार लीला-शक्ति भिन्न-भिन्न समयमें विभिन्न लीला-गुण भिन्न-भिन्न भावमें प्रकट करती है, श्रीकृष्ण विरुद्ध धर्माश्रय तो हैं ही। श्रीकृष्णके नायकरूपके चार भेद हैं—धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त और धीरोद्धत्त। धीरोद्धत्त नायककी प्रकृति गम्भीर होती है। वह विनयी, क्षमाशील, करुण, सुदृढ़व्रत, आत्मश्लाघाशून्य, गूढ़गर्व और सुसत्वभृत—बलवान् होता है। धीरललित रसिक, विदग्ध, नवतरुण और प्रायः प्रेयसीके वशीभूत होता है। धीरप्रशान्त नायक शान्त प्रकृतिका तथा क्लेश-सहिष्णु और विनयादिगुणसम्पन्न होता है। धीरोद्धत्त मात्सर्ययुक्त, अहंकारी, मायावी होता है। श्रीकृष्णके लिए दुष्टोंके दमन तथा भक्तोंके संरक्षणके लिए इन दोषोंकी उपयोगिता स्वतः सिद्ध है।

लीला-जगत्‌में श्रीकृष्ण पति और उपपति दोनों हैं। द्वारिकाकी पटरानियोंके वे पति हैं, उन्होंने विप्राग्निको साक्षी देकर उनका पाणिग्रहण किया। वे श्रीकृष्णकी स्वरूप शक्तिकी

मूर्ति हैं, नित्यकान्ता हैं। प्रकट और अप्रकट दोनों लीलाओंमें उनकी पत्नी हैं। उन्हें पति-रूपमें प्राप्त करनेके लिए गोकुलनिवासिनी गोपकन्याओंने कात्यायनीव्रत किया था। उनके वचन हैं :

> कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि।
> नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः॥
> (श्रीभागवत १०।२२।४)

परकीया-प्रेम ही जिनका सर्वस्व है वे उपपति हैं। दोनोंके मिलनकी उत्कंठामें जो बाधा होती है उसमें मधुररसका विशेष उत्कर्ष होता है। श्रीकृष्णकी प्रेयसी श्रीकृष्ण-वल्लभा कहलाती हैं। जिनमें श्रीकृष्णके साधारण गुणसमूह विराजित रहते हैं, जो प्रौढ़ प्रेम और माधुर्यसम्पदाके मुख्य आश्रय हैं वे ही श्रीकृष्णवल्लभा हैं। ये स्वकीया और परकीया होती हैं। द्वारिकामें श्रीकृष्णकी सोलह हजार एक सौ आठ रानियाँ स्वकीया हैं, पाणिग्रहण-विधिसे प्राप्त हैं। इनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, कालिन्दी, शैब्या, भद्रा, कौशल्या और माद्री श्रेष्ठ हैं। रुक्मिणी कुटुम्बकी अधीश्वरी और सत्यभामा उत्तमा हैं। कात्यायनी-व्रतपरायणा गोपकन्या भी स्वकीया हैं। जो इस लोक और परलोकमें कोई अपेक्षा नहीं रखतीं और श्रीकृष्णनायकमें आत्मसमर्पण कर देती हैं वे परकीया हैं।

श्रीकृष्णकी परकीया कान्ता दो तरहकी हैं—कन्यका तथा परोढ़ा। परकीया कान्ता प्रायः नन्दव्रजमें निवास करती हैं, उनकी प्रच्छन्नकामता गोकुलेन्द्र श्रीकृष्णकी सुखदायिनी होती है। प्रच्छन्नकामतासे मधुररसका उत्कर्ष होता है। अनूढ़ा कन्यका वे कहलाती हैं, जो लज्जाशील और पितृगृह-पालित होती हैं, कात्यायनीव्रतरता कन्यका हैं। परोढ़ा विवाहिता होकर भी सर्वदा श्रीहरिसम्भोगलालसावती होती हैं, वे अप्रसूतिका—अजातसन्ताना होकर भी श्रीकृष्णकी परोढ़ा कान्ता हैं। परोढ़ा तीन प्रकारकी होती हैं—साधनपरा, देवी और नित्यप्रिया। साधनपरा दो तरहकी होती हैं—यौथिकी अयौथिकी। जो एक साथ मिलकर भिन्न-भिन्न गणमें विभक्त होकर साधन करती हैं, साधनसिद्धिमें श्रीकृष्णपरिकरयुक्त होती हैं वे यौथिकी हैं। वे दो तरहकी होती हैं—दण्डकारण्यवासी मुनिगण तथा श्रुत्यभिमानिनी देवीगण। पद्मपुराण उत्तरखण्डमें उल्लेख है कि दण्डकारण्यवासी अनेक मुनिगण व्रजेन्द्रनन्दनकी कान्ताभावसे उपासना करते थे, श्रीरामके वनगमन-समयमें उनमें श्रीकृष्णविषयक रतिका उदय हुआ, जातरति रूपमें वे व्रजमें गोपी होकर प्रकट हुईं। उपनिषद्गण—सूक्ष्मदर्शिनी सकल महोपनिषद् श्रुत्यभिमानी देवीगणने गोपीका असमोर्द्ध सौभाग्य देखकर उनकी ही तरह सौभाग्यप्राप्तिकी आकांक्षासे तप किया, व्रजमें गोपीरूपमें जन्म लिया। अयौथिकीने गोपीभावमें अत्यन्त लुब्ध होकर रागानुगा साधनसे गोपीभावयोग्य भजनोत्कण्ठा प्राप्तकर श्रीकृष्णकी सुखैकतात्पर्यमयी सेवाके लिए दो-दो या तीन-तीनके रूपमें व्रजमें जन्म लिया। श्रीकृष्णके अवतरित होनेपर देवता गोपकन्या रूपमें प्रकट हुए, वे देवीगण हैं व्रजमें श्रीराधा और चन्द्रावली श्रीकृष्णकी नित्य प्रेयसी हैं, राधा मुख्य नित्य प्रिया हैं।

श्रीराधा महाभावस्वरूपा हैं। श्रीकृष्णको तीन शक्तियाँ हैं—चिच्छक्ति—स्वरूपशक्ति, जीवशक्ति और मायाशक्ति। चिच्छक्तिके तीन भेद हैं—सन्धिनी, संवित् और आह्लादिनी। आह्लादिनी आनन्दमयी स्वरूपशक्ति है। इसका सार प्रेम है, प्रेमका सार भाव है और भावकी पराकाष्ठा महाभाव है। श्रीराधा कृष्णकान्ताशिरोमणि हैं।

श्रीराधाकी सखियाँ सर्वगुणमण्डित हैं। वे पाँच तरहकी होती हैं—सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमप्रेष्ठसखी। परमप्रेष्ठसखी आठ हैं—ललिता, विशाखा, चित्रा, चम्पकलता, तुंगविद्या, इन्दुलेखा, रंगदेवी और सुदेवी। इन सखियोंमें श्रीकृष्ण और श्रीराधा दोनोंके प्रति पूर्ण प्रेमभाव रहता है।

श्रीकृष्णका औपपत्य निन्दित नहीं है, प्राकृत नायकका उपपति होना निन्दित है। श्रीकृष्ण रसनिर्यासके आस्वादनके लिए ब्रह्माण्डमें अवतीर्ण होकर औपपत्य स्वीकार करते हैं, वे प्राकृत नायक—जीव नहीं, परमात्मा हैं, रसस्वरूप परब्रह्म हैं। मधुरभक्तिरसके विषयालम्बन श्रीकृष्ण हैं और आश्रयालम्बन व्रजसुन्दरी हैं। गोपोंसे उनका विवाह मायामय है। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्तीका कथन है कि मायाकल्पित प्रतिमूर्तिसमूहको गोपगण अपनी-अपनी पत्नी कहकर केवल अभिमानका पोषण कर सके। उनके साथ उनका संभोग कहीं नहीं लक्षित होता है। उनका परोढ़ात्व प्रातीतिक था। श्रीकृष्णकी अप्रकट लीलामें परकीया भाव नहीं, स्वकीया भाव है। प्रकट लीलामें स्वकीयामें परकीयत्वका आरोपमात्र है। श्रीराधाका प्राकृत विवाह कल्पनामात्र है। सर्वान्तर्यामी भगवान्‌के पक्षमें परदारसेवाकी बात युक्तिसंगत नहीं है। श्रीकृष्ण नित्य स्वकीय पति हैं और व्रजदेवियाँ नित्य स्वकीया पत्नी हैं। प्रीतिसन्दर्भमें श्रीजीव-गोस्वामीका कथन है :

वस्तुतः परमस्वीया अपि प्रकटलीलायां परकीयायमानाः श्रीव्रजदेव्यः।

श्रीकृष्णरति विभाव, अनुभाव, सात्त्विक और व्यभिचारी भावके सामञ्जस्य-स्तरपर मधुर भक्तिरसमें परिणत हो जाती है। विषयालम्बन श्रीकृष्ण और आश्रयालम्बन व्रजदेवी हैं। श्रीकृष्ण और उनकी प्रेयसीके गुण, नाम, चरित्र आदि इस रसके उद्दीपन विभाव हैं।.... इस रसका स्थायीभाव मधुर रति है; यह तीन तरहकी होती है—साधारणी, समञ्जसा और समर्था।

मधुर भक्तिरसके दो भेद हैं—विप्रलम्भ और संभोग। विप्रलम्भ चार प्रकारका होता है—पूर्वराग, मान, प्रेमवैचित्य और प्रवास। नायक और नायिकाके मिलनेके पहले उनके परस्पर दर्शन और श्रवणसे उन्मीलित-आस्वादमयी रति ही पूर्वराग है। दर्शन तीन प्रकारका होता है—साक्षात्दर्शन, चित्रपटदर्शन और स्वप्नदर्शन। वन्दी, दूत, सखी, गीतादिसे श्रवण होता है।

पूर्वराग तीन तरहका होता है—प्रौढ़, समञ्जस और साधारण। समर्थारतिसे उत्पन्न पूर्वराग प्रौढ़ कहलाता है। समञ्जस पूर्वराग समञ्जसा रतिका स्वरूप है और साधारण पूर्वराग साधारणी रतिके तुल्य होता है। पूर्वरागमें परस्पर नायक-नायिकाकी यही चेष्टा होती

है कि वे दूत, वयस्य अथवा सखीद्वारा कामलेख और माल्यादि भेजते हैं। कामलेख दो तरहका होता है—निरक्षर और साक्षर। अतिशय रक्तवर्णपल्लव अर्धचन्द्रोदयकी तरह नखचिह्नित और वर्ण-विन्यासशून्य होनेपर निरक्षर कहलाता है। नखचिह्नादिसे ही अभिप्राय प्रकट हो जाता है। गाथामयी हस्तलिपिसे अंकित वृहद् पुष्पदल साक्षर कहलाता है, यह पद्मतन्तुसे बन्द किया जाता है और कुंकुमद्वारा मुद्रांकित किया जाता है। कस्तूरीसे लिखा जाता है। परस्पर अनुरक्त होनेपर तथा एकत्र रहनेपर भी नायक-नायिकाके आलिंगन आदिका प्रतिबन्धक भाव मान कहलाता है। मान दो प्रकारका होता है—सहेतु और निर्हेतु। नायक-नायिकाके प्रेमका जहाँ प्रकाश होता है वहाँ सहेतु मान है; कारणके अभावमें और कारणाभासमें भी नायक और नायिकाके प्रणयविकासमें निर्हेतु मान होता है।

स्वभाववश प्रियतमके सन्निधानमें अवस्थित होनेपर विरहबुद्धिवश आर्ति प्रेमवैचित्य है। जो पहले मिल चुके हैं, ऐसे नायक और नायिकामें देशान्तरगमनवश व्यवधानका आना प्रवास कहा जाता है।

नायक और नायिकके दर्शन, आलिंगन, सम्भाषण तथा स्पर्श आदिसे परस्पर सुख-तात्पर्य-निषेवनसे प्राप्त उल्लास सम्भोग कहलाता है। जाग्रत् अवस्थाका सम्भोग मुख्य कहलाता है। मुख्य संभोग चार तरहका होता है—संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समृद्धिमान्। पूर्वरागके बादका सम्भोग संक्षिप्त और मानके बादका सम्भोग संकीर्ण कहा जाता है। किञ्चित् दूरपरक सम्भोग सम्पन्न और सुदूरपरक सम्भोग समृद्धिमान् कहा जाता है। किंचित् दूरके प्रवाससे नायकके आनेपर सम्पन्न सम्भोग तथा अधिक दूरके प्रवाससे नायकके आनेपर समृद्धिमान् सम्भोग समझा जाता है। स्वप्नमें प्रियतम—श्रीकृष्णकी प्राप्ति गौण सम्भोग है।

शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—समस्त भक्ति रसकी उपासनामें श्रीकृष्ण—परम प्रियतम ही उपास्य हैं। भगवती श्रुतिका भी यही संकेत है : वे आत्मस्वरूप प्रियतम हैं।

आत्मानमेव प्रियमुपासीत।

(बृहदारण्यक उपनिषद् १।४।८)

श्रीकृष्ण समस्त चराचरके जीवन-धन हैं, प्राणाधार हैं। उनके भक्तिरसमय लीलामृतके सम्बन्धमें सनातन गोस्वामीके शब्दोंमें इतना ही कहना पर्याप्त है :

तत्तद्विनोदामृतसागरान्तरं बिभेत्यलं मे रसनावगाहितुम्।
सदैव तत्तन्मधुरप्रियापि यत् कर्मण्यशक्ये न जनः प्रवर्त्तते॥

(बृहद्भागवतामृत २।५।११४)

श्रीकृष्णके लीलामृतसागरको पार करनेमें मेरी रसना भयभीत है, वह तो उसका निरन्तर पान करना चाहती है। यद्यपि प्रत्येक प्राणी अपनी प्रिय वस्तुका सदा आस्वादन करना चाहता है, तथापि शक्ति न होनेसे वह आस्वादन नहीं कर सकता है।

●

आदर्श जीवनकी एक झाँकी—

सतीशिरोमणि सीता

(सीतानवमीके उपलक्ष्यमें)

'राम'

★

भारतीय देवियोंमें सतीशिरोमणि सीताका स्थान सबसे ऊँचा है। सीता और राम—ये दो ही भारतीय जनताके प्राण हैं। हिंदू-समाजके घर-घरमें, प्राण-प्राणमें सीता और राम रमे हुए हैं। श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमेश्वर हैं और सीता उनकी स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्ति। इस नातेसे तो वे सम्पूर्ण विश्वके ही वन्दनीय हैं, किन्तु भारतीय स्त्री-पुरुषोंके साथ उनका और भी घनिष्ठतम सम्बन्ध है। वे सुख-दुःखमें सदा हमारे साथ रहकर हमें सान्त्वना देते और कर्तव्य-मार्गका दर्शन कराते रहते हैं। उनका जीवन हमारे लिए एक दिव्य प्रकाश है; उस प्रकाशमें चलनेसे हमें कभी अन्धकारमें नहीं भटकना पड़ेगा। स्त्रीके शील और धैर्यकी परीक्षा होती है संकटकालमें। अकेली सीताको बार-बार जितने बड़े-बड़े संकटोंका सामना करना पड़ा, उतने संकट कदाचित् ही किसी स्त्रीको सहन करने पड़े होंगे। उन्हें अनेक बार अग्निपरीक्षा देनी पड़ी और विपत्तिकी आँचसे तपकर वे सदा खरे सोनेकी भाँति निखर उठी थीं। यही कारण है कि भारतीय साहित्यके अधिकांश पृष्ठ सीताके उज्ज्वल चरित्रोंसे ही गौरवान्वित हुए हैं। इतिहास, पुराण और काव्यसे लेकर स्त्रियोंके ग्राम्य गीतोंतकमें सीताकी समानरूपसे प्रतिष्ठा हुई है। उनका चरित्र अगाध है। यहाँ संक्षेपसे ही उनके आदर्श जीवनकी कुछ चर्चा करके लेखनी पवित्र की जायगी।

प्राचीन कालमें मिथिला प्रान्तकी राजधानी मिथिला ही थी, जनकवंशी क्षत्रियोंके अधिकारमें होनेसे मिथिलापुरीका दूसरा नाम जनकपुर भी था। एक समय वहाँ सीरध्वज जनक नामसे प्रसिद्ध धर्मात्मा राजा राज्य करते थे। वे शास्त्रोंके ज्ञाता, परम वैराग्यवान् तथा ब्रह्मज्ञानी थे। उनका जीवन एक त्यागी तपस्वीका जीवन था, इसीलिये उस समयके साधु-महात्मा, ऋषि मुनि उन्हें राजर्षि कहते थे। एक बार राजा जनक यज्ञके लिए पृथ्वी जोत रहे थे। उस समय चौड़े मुँहवाली सीता (हलके धँसनेसे बनी हुई गहरी रेखा) से एक कुमारी कन्याका प्रादुर्भाव हुआ, जो रतिसे भी बढ़कर सुन्दरी तथा साक्षात् लक्ष्मीके समान रूपवती थी। राजाने उस कन्याको भगवान्का दिया हुआ प्रसाद माना और अपनी औरस पुत्रीकी भाँति बड़े लाड़-प्यारसे उसका पालन किया। सीतासे ही प्रकट होनेके कारण

कन्याका नाम सीता रक्खा गया। जनककी पुत्री होनेसे वह 'जानकी' भी कहलाने लगी। जैसे आत्माके प्रति सभी प्राणियोंका स्वाभाविक आकर्षण होता है, उसी प्रकार सीताके प्रति माता-पिताका मन अधिक आकृष्ट था। राजा जनकके एक छोटी कन्या और थी जिसका नाम उर्मिला था। सीता शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगी। शरीरके ही साथ रूप, लावण्य और गुणोंकी वृद्धि होने लगी। इसी प्रकार माता-पिताका स्वाभाविक अनुराग भी निरन्तर बढ़ता गया।

एक दिन सीता सखियोंके साथ उद्यानमें खेल रही थीं। वहाँ उन्हें दो तोते बैठे दिखायी दिये, जो बड़े ही सुन्दर थे। वे दोनों पक्षी एक वृक्षकी डालपर बैठे-बैठे एक बड़ी मनोहर कथा कह रहे थे—'इस पृथ्वीपर श्रीराम नामसे प्रसिद्ध एक बड़े सुन्दर राजा होंगे। उनकी महारानीका नाम सीता होगा। श्रीरामचन्द्रजी बड़े बुद्धिमान् और बलवान् होंगे तथा समस्त राजाओंको अपने अधीन करके सीताके साथ ग्यारह हजार वर्षोंतक राज्य करेंगे। धन्य हैं जानकी देवी और धन्य हैं श्रीराम, जो एक दूसरेको पाकर इस लोकमें आनन्दपूर्वक विहार करेंगे।' तोतेके मुँहसे ऐसी बातें सुनकर सीताने सोचा, 'ये दोनों पक्षी मेरे ही जीवनकी कथा कह रहे हैं। इन्हें पकड़कर सभी बातें पूछूँ'? ऐसा विचारकर उन्होंने सखियोंसे कहा—'यह देखो, इस पर्वतके शिखरपर जो वृक्ष है, उसकी डालीपर दो पक्षी बैठे हुए हैं। ये दोनों बहुत सुन्दर हैं। तुमलोग चुपकेसे जाकर इनको पकड़ लाओ।' सखियाँ उस पर्वतपर गयीं और दोनों पक्षियोंको पकड़ लायीं। सीताने उन्हें हाथमें लेकर प्यार किया और आश्वासन देते हुए कहा—'देखो, डरना नहीं; तुम दोनों बड़े सुन्दर हो। मैं यह जानना चाहती हूँ कि तुम कौन हो और कहाँसे आये हो। राम कौन हैं और सीता कौन हैं, तुम्हें उनकी जानकारी कैसे हुई?' सीताके इस प्रकार प्रेमपूर्वक पूछनेपर उन पक्षियोंने कहा—'देवि! बाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध एक बहुत बड़े महर्षि हैं, हमलोग उन्हींके आश्रममें रहते हैं। महर्षिने एक बड़ा मधुर काव्य बनाया है। जिसका नाम है रामायण। उसकी कथा मनको बहुत प्रिय लगती है। महर्षि अपने शिष्योंको रामायण पढ़ाते हैं और सदा उसके पद्योंका चिन्तन करते रहते हैं। प्रतिदिन सुनते-सुनते हमें भी उसकी बातें बहुत कुछ मालूम हो गयी हैं। हम तुम्हें रामका परिचय देते हैं, सुनो—अयोध्याके महाराज दशरथ महर्षि ऋष्यशृङ्गको बुलाकर—उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ करावेंगे। उस यज्ञके प्रभावसे भगवान् विष्णु उनके यहाँ चार शरीर धारण करके प्रकट होंगे। वे चारों भाई क्रमशः श्रीराम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके नामसे प्रसिद्ध होंगे। देवाङ्गनाएँ भी उनकी उत्तम लीलाओंका गान करेंगी। श्रीराम महर्षि विश्वामित्रके साथ मिथिला पधारेंगे और राजा जनकके यहाँ रक्खा हुआ शिवजीका धनुष तोड़कर लक्ष्मीस्वरूपा सीताके साथ विवाह करेंगे। उनके अन्य तीन भाइयोंका विवाह भी मिथिलामें ही होगा। सुन्दरी! ये तथा और भी बहुत-सी बातें हमने महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें सुनी हैं। तुमने जो कुछ पूछा था, हमने वह बता दिया। अब हमें छोड़ दो। हम दूसरे वनमें जाना चाहते हैं।'

पक्षियोंकी बातें सीताके कानोंमें अमृतकी वर्षा कर रही थीं। उन्होंने कुछ और पूछा—'श्रीरामचन्द्रजी कैसे हैं? उनके गुणोंका वर्णन करो। तुम्हारी बातें मुझे बड़ी प्रिय

लगती हैं।' सीताके प्रश्न सुनकर तोतेकी स्त्रीने समझ लिया कि ये ही जनकनन्दिनी हैं; फिर तो वह उनके चरणोंपर गिर पड़ी और बोली—'श्रीरामचन्द्रजीका मुख कमलके समान सुन्दर है। नेत्र बड़े-बड़े तथा खिले हुए पङ्कजकी शोभा धारण करते हैं। नासिका ऊँची, पतली और मनोहारिणी है। दोनों भौंहें सुन्दर ढंगसे परस्पर मिली हुई हैं। भुजाएँ घुटनोंतक लंबी और मनको लुभानेवाली हैं। गला शङ्खके समान है, विशाल वक्ष:स्थलमें श्रीवत्सका चिह्न सुशोभित होता है। उनका कटिभाग, जंघा तथा घुटने अत्यन्त मनोहर हैं। चरणारविन्दकी, शोभा वर्णनसे परे हैं। श्रीरामचन्द्रजीका रूप कितना मनोहर है, इसका वर्णन मैं क्या कर सकती हूँ। जिनके सौ मुख हैं, वे भी उनके गुणोंका बखान नहीं कर सकते। जिनकी झाँकी देखकर लावण्यमयी लक्ष्मी भी मोहित हो गयीं, उनका दर्शन करके दूसरी कौन स्त्री है, जो मोहित न होगी मैं श्रीरामका कहाँतक वर्णन करूँ। वे सब प्रकारके ऐश्वर्यमय गुणोंसे युक्त हैं। जनककिशोरी सीता धन्य हैं, जो रघुनाथजीके साथ हजारों वर्षोंतक प्रसन्नतापूर्वक रहेंगी; किन्तु सुन्दरी ! तुम कौन हो ? जो इतना प्रेमके साथ श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका वर्णन सुनती हो।'

जानकी बोलीं—'तुम जिसे जनकनन्दिनी सीता कहती हो, वह मैं ही हूँ। श्रीरामने मेरे मनको अभीसे लुभा लिया है। वे यहाँ आकर जब मुझे ग्रहण करेंगे तभी मैं तुम दोनोंको छोड़ूँगी। तुमने अपने वचनोंसे मेरे मनमें रामको पानेका लोभ उत्पन्न कर दिया है; अतः मेरे घरमें सुखसे रहो और मीठे-मीठे पदार्थ भोजन करो।' सीताकी यह बात सुनकर सुग्गी अनिष्टकी आशङ्कासे काँप उठी और विनती करती हुई बोली—'साध्वी ! हम वनके पक्षी हैं। पेड़ोंपर रहते हैं और स्वच्छन्द विचरा करते हैं। तुम्हारे घरमें हमें सुख नहीं मिलेगा। मैं गर्भिणी हूँ। अपने स्थानपर जाकर बच्चे पैदा करूँगी। उसके बाद फिर तुम्हारे पास आ जाऊँगी।' तोतेने भी ये ही बातें कहकर प्रार्थना की; किन्तु सीता उस सुग्गीको छोड़नेके लिए उद्यत न हुईं। दोनों पक्षी बहुत रोये, गिड़गिड़ाये; किन्तु उन्होंने बालकोचित हठके कारण उसे नहीं छोड़ा। वे वनवासी विहङ्गमोंकी हार्दिक वेदनाका अनुभव न कर सकीं। सुग्गीके लिए पतिका वियोग असह्य हो गया। वह बोली—'अरी ! मुझ दुःखिनीको इस अवस्थामें तू पतिसे अलग कर रही है, अतः तुझे भी गर्भिणीकी दशामें पतिसे विलग होना पड़ेगा।' यों कहकर 'राम-राम'का उच्चारण करते हुए सुग्गीने अपने प्राण त्याग दिये। उसे लेनेके लिये एक सुन्दर विमान आया और वह दिव्य रूप धारण करके उस विमानके द्वारा भगवान्के धामको चली गयी। पत्नीके वियोगमें तोतेने भी देह त्याग दिया। वही इस वैरका बदला लेनेके लिए अयोध्यामें धोबीके रूपमें प्रकट हुआ। इस प्रकार विदेहनन्दिनी सीताके जीवनमें आनेवाले विरह दुःखका बीज उसी समय पड़ गया।

विदेहकुमारी सीता क्रमशः बढ़कर सयानी हो गयीं। राजाने अपनी उस अयोनिजा कन्याके सम्बन्धमें यह निश्चय किया कि 'जो अपने पराक्रमसे शिवजीके दिये हुए धनुषको चढ़ा देगा और तोड़ डालेगा, उसीके साथ इस कन्याका विवाह करूँगा।' उस धनुषका इतिहास इस प्रकार है—पूर्वकालमें पराक्रमी भगवान् शङ्करने यही धनुष उठाकर प्रजापति

दक्षके यज्ञका विध्वंस किया। जब यज्ञ नष्ट हो गया तो वे क्रोधमें भरकर बोले—'देवताओ! तुमलोगोंने मुझे इस यज्ञमें भाग नहीं दिया; अतः इस धनुषसे मैं तुम सबके मस्तक काट डालूँगा।' यह सुनकर देवता बहुत डरे और स्तुतिके द्वारा उन्हें प्रसन्न करनेका यत्न करने लगे। भगवान् आशुतोष ठहरे; उनका रोष कबतक टिकता! उन्होंने प्रसन्न होकर बड़े प्रेमके साथ वह धनुष देवताओंको ही अर्पण कर दिया। वही धनुष जनकके पूर्वज महाराज देवरातके पास धरोहरके रूपमें रक्खा गया था।

सीताजी विवाहके योग्य हो गयी थीं; इसलिये राजर्षि जनकने धनुष-यज्ञके साथ ही सीताके स्वयंवरका आयोजन किया। निमन्त्रण पाकर देश-देशके राजा मिथिलामें आये। राजाने सबको ठहरनेका स्थान दे सबका यथायोग्य सत्कार किया। महर्षि विश्वामित्र भी यज्ञोत्सव देखनेके लिए ऋषिमुनियोंके साथ मिथिलामें पधारे। उनके साथ श्रीराम और लक्ष्मण भी थे। नगरके बाहर आमोंका एक सुन्दर बगीचा था। वहाँ सब प्रकारके सुभीते थे। विश्वामित्रजीको वही स्थान पसंद आया; अतः वे सबके साथ वहीं ठहर गये। राजा जनकको जब उनके आनेका समाचार मिला तो वे श्रेष्ठ पुरुषों और ब्राह्मणोंको साथ ले उनसे मिलनेके लिए गये। राजाने मुनिके चरणोंपर मस्तक रखकर प्रणाम किया और मुनिने प्रसन्न होकर राजाको आशीर्वाद दिया। फिर सारी ब्राह्मणमण्डलीको मस्तक झुकाकर राजाने अपना अहोभाग्य माना। कुशलप्रश्नके पश्चात् विश्वामित्रने राजाको विठाया। इतने हीमें भाई राम-लक्ष्मण, जो फुलवारी देखने गये थे, वहाँ आये। उनके आनेपर सब लोग उठकर खड़े हो गये। विश्वामित्रजीने उन्हें अपने पास विठा लिया। दोनों भाइयोंको देखकर सबको बड़ा सुख मिला। सबके नेत्रोंमें प्रेम और आनन्दके आँसू उमड़ आये। शरीर रोमांचित हो उठे। श्रीरामचन्द्रजीकी मनोहारिणी मूर्ति देखकर राजा विदेह (जनक) विशेष रूपसे विदेह हो गये—उन्हें देहकी भी सुध-बुध न रही। तदनन्तर राजाने उनका परिचय पूछा। विश्वामित्रजीने बतलाया—'ये दोनों भाई रघुकुलमणि महाराज दशरथके पुत्र हैं। राजाने इन्हें मेरे हितके लिए भेजा है। इन्होंने ही ताड़का और सुबाहुको मारकर मेरे यज्ञकी रक्षा की है। मार्गमें आते समय गौतमपत्नी अहिल्याका भी उद्धार किया है। इन दोनों भाइयोंमें बहुत घनिष्ठ प्रेम है।' परिचय पाकर राजा जनक बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सबको साथ ले जाकर एक सुन्दर महलमें ठहराया, जो सभी ऋतुओंमें सुखदायक था।

तदनन्तर विश्वामित्रजीकी आज्ञा ले राम और लक्ष्मण दोनों भाई नगर देखनेके लिए गये। पुरवासियोंने जब यह समाचार पाया तो उन्हें देखनेके लिए सब घर-बार, कामकाज छोड़कर ऐसे दौड़े, मानों दरिद्र मनुष्य खजाना लूटने दौड़े हों। युवती स्त्रियाँ घरके झरोखोंसे झाँकने लगीं। जिसने देखा, वही मोहित हो गयी। घर-घरमें इन्हीं दोनों भाइयोंकी चर्चा थी। सब लोग यही कहते कि 'जानकीजीके योग्य वर तो ये ही हैं।' श्रीराम और लक्ष्मण क्रमशः नगरके बाजार, हाट, गली, सड़क, चौराहे तथा सुन्दर-सुन्दर मकान देखते हुए पूर्व दिशाकी ओर गये, जहाँ धनुष-यज्ञके लिए भूमि बनायी गयी थी। लंबा-चौड़ा पक्का आँगन था; जिसपर सुन्दर वेदी सजायी गयी थीं। चारों ओर सोनेके बड़े-बड़े मञ्च

थे। राजाओं, पुरवासियों तथा स्त्रियोंके बैठनेके लिए अलग-अलग स्थान बने हुए थे। सब देख-सुनकर दोनों भाई लौट आये। रात-बीती, प्रभात हुआ और स्नान आदिसे निवृत्त होकर श्रीराम और लक्ष्मण मुनिकी आज्ञासे फूल लेनेके लिए चले। उन्होंने जाकर राजा जनकका सुन्दर बाग देखा; जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गयी है। नये-नये पत्तों, फूलों और फलोंसे भरे हुए सुन्दर वृक्ष अपनी सम्पत्तिसे कल्पवृक्षको भी लजा रहे हैं। उद्यानके बीचमें एक सुन्दर सरोवर शोभा पा रहा है, जिसमें मणियोंकी सीढ़ियाँ विचित्र ढंगसे बनी हैं। स्वच्छ निर्मल जल, बहुरंगे कमल, जलपक्षियोंके कलरव और भ्रमरोंके गुंजार उसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। बागमें चारों ओर दृष्टि डालकर और मालियोंसे पूछकर वे प्रसन्न मनसे पत्र और पुष्प लेने लगे। इसी समय सीताजी भी वहाँ आयीं। माताने उन्हें पार्वतीजीकी पूजाके लिए भेजा था। उनके साथमें सुन्दरी और सयानी सखियाँ थीं; जो मनोहर वाणीमें गीत गा रही थीं। सरोवरके पास ही गिरिजाजीका मन्दिर शोभा पा रहा था। उसकी मनोहारिणी सुषमा अवर्णनीय थी। सीताने सखियोंसहित सरोवरमें स्नान किया और प्रसन्न मनसे वे गिरिजाजीके मन्दिरमें गयीं। वहाँ उन्होंने बड़े प्रेमसे पूजा की और मनके अनुरूप वर माँगा। एक सखी सीताजीका साथ छोड़कर फुलवारी देखने चली गयी थी। उसने राम और लक्ष्मण दोनों भाइयोंको फूल चुनते देखा और प्रेममें विह्वल होकर वह सीताजीके पास आयी। सखियोंने उसकी दशा देखी। शरीर पुलकित है, नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक रहे हैं। सब कोमल वाणीमें पूछने लगीं—'अरी! बता तो सही, कौन-सी ऐसी निधि मिल गयी, जिससे तू हर्षके मारे फूली नहीं समाती।' उसने कहा—'दो राजकुमार बाग देखने आये हैं। उनकी किशोर अवस्था है और वे सभी दृष्टियोंसे परम सुन्दर, अत्यन्त मनोहर हैं। एकका शरीर साँवला है और दूसरेका गोरा। उनके रूपका वर्णन कैसे करूँ? आँखोंने देखा है, वे बोल नहीं सकती; वाणी बोल सकती है, पर उसके नेत्र नहीं।' यह सुनकर सीताजीके हृदयमें बड़ी उत्कण्ठा हुई। उनकी मनोदशा जानकर चतुर सखियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। एक कहने लगी—'सखी! ये वे ही राजकुमार हैं, जो कल विश्वामित्रजीके साथ आये सुने गये हैं। उन्होंने अपने रूपकी मोहनी डालकर नगरके सभी नरनारियोंको अपने वशमें कर लिया है। सब लोग जहाँ-तहाँ उन्हींकी छविका वर्णन करते हैं। अवश्य चलकर देखना चाहिए, वे देखने ही योग्य हैं।'

उस सखीकी बात सीताजीको बड़ी प्रिय लगी। दर्शनके लिए उनके नेत्र अकुला उठे। उसी प्यारी सखीको आगे करके सीताजी चलीं। उनके हृदयमें पूर्वकालसे ही जो प्रेम सञ्चित था, उसे कोई नहीं देख पाता था। एक बार नारदजीने सीतासे मिलकर श्रीरामके दर्शन तथा मिलनकी बात बतायी थी। उनके वचनोंका स्मरण करके सीताजीके मनमें पावन प्रेमका उदय हो आया। वे चकित होकर सब ओर इस प्रकार देखने लगीं, मानो कोई डरी हुई छोटी-सी हरिणी हो। जब सखियोंके साथ सीताजी रघुनाथजीके दर्शनके लिए जा रही थीं, उस समय उन सबके कंकण, करधनी और पायजेब आदि गहनोंकी मधुर झनकार होने लगी। उसे श्रीरामचन्द्रजीने सुना; उस मनोहर शब्दकी ओर दृष्टि फेरी,

सीताजीका मुखचन्द्र सामने प्रकाशित हो रहा था। उसपर दृष्टि पड़ते ही श्रीरघुनाथजीके नेत्र चकोर बन गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये। पलकें नहीं गिरती थीं। सीताजीकी शोभा देखकर श्रीरामजीको बड़ा सुख मिला। सीताजीकी आकृति इतनी अनुपम थी, मानो ब्रह्माजीने अपना सारा सृष्टि-कौशल मूर्तिमान् करके संसारको प्रकट दिखा दिया हो। सीताजीकी शोभा सुन्दरताको भी सुन्दर बनानेवाली है। मानो छबिके घरमें दीप-शिखा जल रही है।

इस प्रकार जनकनन्दिनीके सौंदर्यकी सराहना करके अपनी दशा विचारकर श्रीरामने लक्ष्मणको सम्बोधित करके पवित्र मनसे कहा—'तात! ये वे ही जनक-किशोरी हैं, जिनके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। सखियाँ इन्हें गौरीपूजनके लिए ले आयी हैं। ये इस फुलवारीमें प्रकाश फैलाती फिर रही हैं। इनकी अलौकिक शोभा देखकर मेरा स्वभावसे ही पवित्र मन प्रेमविह्वल हो उठा। इसका क्या कारण है; यह सब तो विधाता जाने; किन्तु भाई! मेरे मङ्गलदायक दाहिने अङ्ग फड़क रहे हैं। रघुवंशियोंका यह जन्मगत स्वभाव है कि उनका मन कही कुपंथपर पाँव नहीं रखता। मुझे तो अपने मनपर पूरा विश्वास है, जिसने स्वप्नमें भी परायी स्त्रीपर दृष्टि नहीं डाली है। रणमें शत्रु जिनकी पीठ नहीं देख पाते, परायी स्त्रियाँ जिनके मन और दृष्टिको नहीं लुभा पातीं और भिखारी जिनके यहाँसे खाली हाथ नहीं लौटते, ऐसे श्रेष्ठ मनुष्य संसारमें थोड़े हैं।' इस प्रकार श्रीरामजी छोटे भाईसे बातें कर रहे थे; किन्तु मन सीताजीके मुखकमलकी छबिरूपी मकरन्दका भ्रमरकी भाँति पान कर रहा था। उधर सीताजी चकित होकर चारों ओर देखने लगीं और मन-ही-मन चिन्ता करने लगीं, 'राजकुमार कहाँ चले गये?' तब सखियोंने लताकी ओटमें खड़े हुए दोनों कुमारोंको दिखलाया। श्रीरघुनाथजीका रूप देखकर सीताजीके नेत्र ललचा उठे। वे इतने प्रसन्न हुए, मानो उन्होंने अपनी खोयी हुई निधि पा ली हो। अधिक स्नेहके कारण शरीरकी सुधि नहीं रह गयी। सीता अपलक नेत्रोंसे श्रीरामको इस प्रकार देखने लगीं, जैसे चकोरी शरद्कालके चन्द्रमाको बे-सुध होकर निहारती हो। उन्होंने श्रीरामकी मनोहर मूर्ति अपने हृदय-मन्दिरमें विठाकर पलकोंके किवाड़ लगा लिये, आँख बन्द करके श्रीरघुनाथजीका ध्यान करने लगीं। उसी समय दोनों भाई लताकुञ्जसे प्रकट हुए, मानो दो चन्द्रमा बादलोंका परदा हटाकर निकले हों। उनके नील, गौर शरीर शोभाके भण्डार थे। वे अपने अनुपम सौन्दर्यसे कोटि-कोटि कामदेवको लज्जित कर रहे थे। श्रीरामचन्द्रजीको देखकर सखियाँ अपने-आपको भूल गयीं। एक चतुर सखी धैर्य धारणकर सीताजीका हाथ अपने हाथमें लेकर बोली—'राजकुमारीजी! गिरिजाजीका ध्यान फिर कर लेना। इस समय राजकुमारको देख क्यों नहीं लेती।' तब सीताने लजाकर आँखें खोलीं और दोनों कुमारोंको सम्मुख खड़े देखा। नखसे शिखातक श्रीरामकी शोभा निहारकर और पिताका प्रण याद करके उनका मन बहुत क्षुब्ध हो गया।

कुछ देर तो हो ही गयी थी, अतः माताका भय लगा। श्रीरामको हृदयमें रखकर वे लौट चलीं। मृग, पक्षी और वृक्षोंको देखनेके बहाने सीता बार-बार घूमकर श्रीरामजीकी छबि देखती जाती थीं। उनका प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। सुख, स्नेह, शोभा और

गुणोंकी खान जानकीकी मनोहारिणी छबि भी श्रीरामके हृदय-पटपर अङ्कित हो गयी थी। वे उनकी अनुपम छबिकी सराहना करते हुए लौट गये। सीताजी पुनः भवानीके मन्दिरमें गयीं और उनके चरणोंकी वन्दना करके हाथ जोड़ स्तुति करने लगीं, पार्वतीजी सीताके विनय और प्रेमके अधीन हो गयीं। उन्होंने मुसकराकर सीताको प्रसादमाला अर्पण की और कहा—'जनककिशोरी! मैं आशीर्वाद देती हूँ, मनोकामना पूर्ण होगी। जिसमें तुम्हारा मन अनुरक्त हो गया है, वही वर तुम्हें मिलेगा।' गौरीजीका यह वचन सुनकर जानकीसहित सब सखियोंको बड़ा हर्ष हुआ। सीताने बार-बार भवानीका पूजन किया और वे प्रसन्न मनसे राजमहलको लौट गयीं।

सीताजीका स्वयंवर आरम्भ हुआ। देश-देशके राजा, राजकुमार, विद्वान् ब्राह्मण ऋषि, मुनि, नगरवासी, देशवासी, स्त्री-पुरुष—सभी अपने-अपने लिए नियत यथायोग्य स्थानपर बैठ गये, स्वयंवरमें भाग लेनेवाले राजाओंके मञ्च बहुत सजे-सजाये और सुन्दर थे। श्रीराम और लक्ष्मण भी विश्वामित्रजीके साथ एक ऊँचे मञ्चपर विराजमान थे। राजा जनकने मन्त्रियोंको आज्ञा दी—'चन्दन और मालाओंसे सुशोभित वह दिव्य धनुष यहाँ ले आओ।' वह धनुष आठ पहियोंवाली लोहेकी बहुत बड़ी सन्दूकमें रक्खा था। उसे मोटे-ताजे पाँच हजार आदमी किसी तरह ठेलकर वहाँ ला सके। अवसर जानकर जनकजीने सीताको बुला भेजा। चतुर और सुन्दर सखियाँ आदरपूर्वक उन्हें लिवा लायीं। वे मनोहर वाणीसे गीत गा रही थीं। सीताजीकी शोभा अवर्णनीय थी। उन्होंने ज्योंही रङ्गभूमिमें पैर रक्खा, उनका दिव्य रूप देखकर सभी स्त्री-पुरुष मोहित हो गये। इसके बाद जनककी आज्ञासे भाटोंने उनके प्रणकी घोषणा इस प्रकार की—'राजाओ! आपलोग महाराज जनककी प्रतिज्ञा सुनें। आपके सामने शिवजीका कठोर धनुष रक्खा हुआ है। आपमें-से जो भी इसे तोड़ देगा, उसे त्रिभुवनविजयका सुयश मिलेगा तथा राजकुमारी सीता उसका वरण करेगी।' प्रण सुनकर सब राजा ललचा उठे। जिन्हें अपनी वीरताका अभिमान था, वे बड़े जोशसे शिवजीका धनुष तोड़ने चले; किन्तु तोड़ना तो दूर रहा, वे धनुषको हिला भी न सके। सब लोग हार मानकर बैठ गये। यह देखकर राजा जनकको बड़ा दुःख हुआ। वे कहने लगे—'आप लोगोंमें-से जो लोग अपनेको वीर मानते हों, वे मेरी बात सुनकर नाराज न होंगे। आज मुझे निश्चय हो गया कि पृथ्वी वीरोंसे खाली है। अब आशा छोड़कर आपलोग अपने-अपने घर पधारें। विधाताने सीताका विवाह लिखा ही नहीं है।'

जनकजीकी यह बात लक्ष्मणको बहुत बुरी लगी। उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। ओठ फड़कने लगे और नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उन्होंने श्रीरामके चरणोंमें मस्तक झुकाकर कहा—'मैं समूचे ब्रह्माण्डको गेंदकी तरह उठा लूँगा, कच्चे घड़ेकी तरह फोड़ डालूँगा। इन भुजाओंमें मेरु पर्वतको मूलीकी भाँति टुकड़े-टुकड़े कर देनेकी शक्ति है। इस पुराने धनुषमें क्या रक्खा है। इस सभामें रघुवंशशिरोमणि श्रीरामजीके रहते हुए जनकजीने जो बात कही है, वह कदापि उचित नहीं है।' लक्ष्मणजीके ये वीरोचित उद्गार सुनकर पृथ्वी डगमगा उठी। दिग्गज काँपने लगे। समस्त राजा डर गये। सीताजीके हृदयमें हर्ष हुआ और

जनकजी सकुचा गये। तब विश्वामित्रजीकी आज्ञासे श्रीरामजी धनुषके समीप गये। सब स्त्री-पुरुष उनकी सफलताके लिए देवी-देवताओंको मनाने लगे। उन्होंने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके बड़ी फुर्तीसे धनुष उठा लिया। उनके हाथमें वह धनुष बिजलीकी तरह चमक उठा; फिर खींचनेपर आकाशमें मण्डलाकार दिखायी देने लगा। श्रीरामने धनुषको कब उठाया, कब चढ़ाया और कब खींचा; इसका किसीको पता न लगा। सबने श्रीरामजीको धनुष खींचे खड़े देखा। उसी क्षण उन्होंने धनुषको बीचसे तोड़ डाला और दोनों टुकड़े पृथ्वीपर डाल दिये। आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभी बज उठी; अप्सराएँ नाचने और गाने लगीं। रंग-बिरंगे फूलोंकी वर्षा होने लगी। सारे ब्रह्माण्डमें जय-जयकारकी ध्वनि छा गयी। तब शतानन्दजीकी आज्ञासे सीताजी जयमाल हाथमें लिये श्रीरामचन्द्रजीके समीप गयीं। साथमें सुन्दरी और सयानी सखियाँ मङ्गलाचारके गीत गाती जा रही थीं। निकट पहुँचकर श्रीरामजीकी शोभा निहारकर वे चित्रलिखी-सी रह गयीं। चतुर सखीने उनकी यह दशा देखकर कहा—'राजकुमारी! जयमाल पहनाइये।' सीताजीने दोनों हाथोंसे माला उठायी; पर प्रेमसे विह्वल होनेके कारण वह पहनायी नहीं जाती थी। सखियाँ मङ्गल गाने लगीं और सीताने श्रीरामजीके गलेमें माला डाल दी।

तत्पश्चात् राजा जनकने दूत भेजकर अयोध्यासे महाराज दशरथको बुलवाया। वे विद्वान् ब्राह्मण, महर्षि, पुरोहित, पुरजन तथा चतुरङ्गिणी सेनाके साथ बहुत बड़ी बारात लेकर जनकपुर पहुँचे। भरत और शत्रुघ्न भी आये थे। मिथिलाका नगर हाट-बाटसहित खूब सजाया गया था। प्रत्येक घ में उत्सव मनाया जा रहा था। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमीको विवाहकी तिथि निश्चित थी। विवाहका मण्डप बहुत सुन्दर बना था। दोनों पक्षकी ओरसे वेद-विधिके जाननेवाले ऋषि-महर्षि पधारे थे। पुत्रोंसहित राजा दशरथने मण्डपमें पदार्पण किया। देवतालोग भी दर्शकोंके रूपमें वह विवाह देखनेके लिए आये थे। राजा जनककी छोटी कन्याका नाम उर्मिला था। जनकके भाई कुशध्वजके भी दो पुत्रियाँ थी, माण्डवी और श्रुतकीर्ति। इन चारों कुमारियोंका विवाह राजा दशरथके चारों पुत्रोंके साथ एक ही लग्नमें आरम्भ हुआ। श्रीरामके साथ सीता, भरतके साथ माण्डवी, लक्ष्मणके साथ उर्मिला और शत्रुघ्नके साथ श्रुतिकीर्ति व्याही गयी। स्त्रियोंके मङ्गलगीत, ऋषियोंके वेदमन्त्रोच्चारण तथा देवताओंके आशीर्वादके साथ विधिपूर्वक वैवाहिक कार्य सम्पन्न हुआ। राजा जनकने सभी बरातियोंका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। दान-दहेज भी बहुत दिये। बारात बिदा हुई। पुत्रों और पुत्रवधुओंको साथ ले राजा दशरथ बड़ी प्रसन्नताके साथ अयोध्या पहुँचे। वहाँ भी बड़े समारोहके साथ आनन्दोत्सव मनाया गया। श्रीरामने सीताको और सीताने श्रीरामको पाकर अनिर्वचनीय आनन्दका अनुभव किया। दोनों एक दूसरेके प्रेमका आस्वादन करते हुए बड़े आनन्दसे रहने लगे सीताजी पतिको सदा ही अपनी सेवासे सन्तुष्ट रखती थीं। सास-ससुर तथा अन्य गुरुजनोंके प्रति भी उनका बर्ताव बहुत सुन्दर था। उनकी अन्य बहनें भी उन्हींके आदर्शकी अनुगामिनी थीं।

जनकपुरसे लौटते ही भरत और शत्रुघ्न अपने मामाके साथ केकयनरेशके यहाँ चले गये। वहाँ भाईसहित उनका बहुत आदर-सत्कार हुआ और वे वहाँ बड़े आनन्दसे रहने लगे। इधर श्रीरामचन्द्रजी अपने विनयपूर्ण वर्तावसे गुरुजनोंका आनन्द बढ़ाते हुए राजकार्यमें भी पिताकी सहायता करने लगे। प्रजा उनपर बहुत प्रसन्न थी। सब यही चाहते थे कि श्रीराम-चन्द्रजी युवराज हो जायँ। एक दिन राजाने गुरु वसिष्ठकी सेवामें उपस्थित होकर अपना विचार इस प्रकार प्रकट किया—'मुनिवर! आपकी दयासे मेरी सब अभिलाषा पूरी हो गयी; अब एक ही शेष है। मैं चाहता हूँ, श्रीरामका युवराज-पदपर अभिषेक हो जाय।' वसिष्ठजीने उनके इस विचारका बड़े हर्षके साथ अनुमोदन किया। दिन, तिथि, लग्न—सबका निश्चय हो गया। बड़े जोर-शोरसे अभिषेककी तैयारी होने लगी। नगरके सब लोग यह मङ्गलमय सम्वाद सुनकर इसकी सफलताके लिए देवी-देवता मनाने लगे। हाट-बाट, गली, चौराहे सब सज गये थे। नगरकी शोभा अमरावतीकी सुन्दरताको भी तिरस्कृत कर रही थी। रानी कैकेयीकी एक दासी थी, जिसका नाम था मन्थरा। भगवान्की मायासे उसकी बुद्धि मारी गयी। वह श्रीरामके राजतिलकको बात सुनते ही जल उठी और दौड़ती हुई कैकेयीके महलमें गयी। वह पलँगपर लेटी हुई थी। मन्थराके मुखसे रामके राज्याभिषेकका हाल सुनकर कैकेयी पहले तो बहुत प्रसन्न हुई; किन्तु जब मन्थराने उल्टी-सीधी बहुत-सी बातें समझायीं तो उनका मन उस उत्सवके विरुद्ध हो गया। उसे विश्वास हो गया कि मेरे पुत्रको बाहर भेजकर रामका राज्याभिषेक करना उसके विरुद्ध बहुत बड़ा षड्यन्त्र है। कैकेयी क्रोधमें भरकर कोपभवनमें जा पड़ी। राजा दशरथ महलमें आये। कैकेयीके पास जाकर उन्होंने बहुत अनुनय-विनय की। कैकेयीने संकोच छोड़कर कहा—'आपने पहले एक बार मेरी सेवाके बदले दो वरदान देनेको प्रतिज्ञा की थी। उन्हें आज ही देकर सत्यकी रक्षा कीजिये।' राजा सहमत हो गये। कैकेयीके वे दोनों वर तीखे बाणसे भी भयङ्कर थे। उसने एक वर तो रामका चौदह वर्षके लिए वनवास माँगा और दूसरा भरतका राज्याभिषेक।

कैकेयीके ये कठोर वचन सुनकर राजा सहम गये। उनसे कुछ कहते न बना। उन्हें बड़ी वेदना हुई। उन्होंने कैकेयीको बहुत समझाया, किन्तु सब बेकार हुआ। डराने-धमकानेका भी कुछ फल न हुआ। कैकेयी पत्थरकी भाँति कठोर हो गयी थी। अनुनय-विनय, रोना-गिड़गिड़ाना, लोभ-लालच किसी भी उपायसे वह टस-से-मस न हुई। राजा दशरथ हताश और अचेत होकर गिर पड़े। बात-की-बातमें यह बात सब ओर फैल गयी। अयोध्याका आनन्दोत्सव दारुण विषादके रूपमें परिणत हो गया। श्रीरामचन्द्रजीने सुना और वे वन जानेको तैयार हो गये। माता कौसल्याको जब यह बात मालूम हुई तो वे शोकसे व्याकुल होकर गिर पड़ीं। प्राणप्यारे पुत्रके वनवासकी कल्पनासे ही उनका कलेजा फटने लगा। उन्होंने रामको वन जानेसे रोका; किन्तु रामने धर्मका भय दिखाकर माताको किसी प्रकार धैर्य बँधाया। इसी बीचमें लक्ष्मण आ पहुँचे। वे भयङ्कर क्रोधमें भरे थे। वे कैकेयीके विरुद्ध युद्धकी घोषणा करना चाहते थे, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें ऐसा करनेसे बलपूर्वक रोका।

अन्तमें लक्ष्मणजी भी वन जानेको तैयार हो गये। इसके बाद श्रीरामचन्द्रजी सीतासे विदा लेनेके लिए अपने महलमें गये।

सीताने अभीतक यह सारा हाल नहीं सुना था। उनके हृदयमें यही बात समायी हुई थी कि मेरे पतिका युवराजपदपर अभिषेक हो रहा है। श्रीरामचन्द्रजीने उनके पास पहुँचकर कहा—'मुझे वनमें जानेकी आज्ञा मिली है;' फिर उन्होंने सीताको समझाते हुए कहा—'राजकुमारी! मेरी बात सुनो। इसीमें तुम्हारा और मेरा दोनोंका भला है। मैं चाहता हूँ, तुम यहीं घरमें रहकर सास-ससुरकी सेवा करो। इससे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है। माता जब-जब मेरी याद करें और प्रेमसे व्याकुल होकर अचेत होने लगें तब-तब मधुर वाणीसे पुरानी कथाएँ कहकर उन्हें समझाना। सुमुखि! मैं पिताकी आज्ञाका पालन करके शीघ्र ही लौट आऊंगा। दिन जाते देर नहीं लगेगी। यदि हठ करके वनमें चलोगी तो वहाँ तुम्हें बड़ा कष्ट होगा। वहाँकी धूप, जाड़ा और वर्षा सब भयानक है। रास्तेमें कुश, काँटे और बहुत-से कंकड़ रहते हैं। उनपर बिना जूतेके पैदल ही चलना पड़ेगा। पर्वतोंकी गुफाएँ, खोह, नदियाँ, नद और नाले इतने दुर्गम और गहरे हैं कि उनकी ओर देखातक नहीं जाता। रीछ, बाघ, भेड़िये, सिंह और हाथी ऐसे चिग्घाड़ते हैं कि धीरज छूट जाता है। जमीनपर सोना, पेड़ोंकी छाल पहनना और कन्द-मूल-फलका भोजन करना पड़ता है। और वे भी क्या सदा सब दिन मिलेंगे? सब कुछ अपने-अपने समयके अनुकूल ही मिल सकेगा। वहाँ मनुष्यभक्षी राक्षस घूमते रहते हैं। पहाड़का पानी बहुत लगता है। भीषण सर्प, भयानक पक्षी और झुण्ड-के-झुण्ड निशाचर—ये ही वहाँके निवासी हैं। वनकी कष्ट-कथा कहने मानकी नहीं है। हंसगमनी! मानसरोवरके अमृतके समान जलसे पली हुई हंसिनी कहीं खारे समुद्रमें जी सकती है? इन सब बातोंका विचार करके मेरी यही राय है कि तुम घरपर रहो। वनमें बड़ा कष्ट है।'

प्रियतमके ये कोमल तथा मनोहर वचन सुनकर सीताके सुन्दर नेत्र आँसुओंसे भर गये। उनसे कुछ उत्तर देते नहीं बनता था। वे यह सोचकर व्याकुल हो उठीं कि मेरे स्वामी मुझे छोड़ जाना चाहते हैं। उनकी दृष्टिमें पतिके वियोगके समान जगत्‌में कोई दुःख नहीं था; अतः वे धीरे-धीरे श्रीरामके वचनोंका उत्तर देने लगीं। उनका मार्मिक उत्तर गोस्वामीजीके शब्दोंमें इस प्रकार है—

प्राननाथ करुनायतन सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान॥
मातु पिता भगिनि प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुसील सुखदाई॥
जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू॥
भोग रोगसम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू॥

प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माहीं। मोकहुँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें॥
खग मृग परिजन नगरु बनु बलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुरसदन सम परनसाल सुख मूल॥
बनदेवीं बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥
कन्द मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनुछिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहउँ मुदित दिवस जिमि कोकी॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु वियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥
अस जियँ जानि सुजान शिरोमनि। लेइअ संग मोहिं छाड़िअ जनि॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी। करनामय उर अन्तरयामी॥
राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनि नहिं प्रान।
दीनबन्धु सुन्दर सुखद सील सनेह निधान॥
मोहि मग चलत न होइहिं हारी। छिनु-छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहिं भाँति प्रिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मनमाहीं॥
श्रमकन सहित श्याम तनु देखे। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥
सम महि तृन तरुपल्लव डासी। पाय पलोटिहिं सब निधि दासी॥
बार बार मृदु मूरत जोहीं। लागिहि तात बयारि न मोहीं॥
को प्रभु संग मोहिं चितवनिहारा। सिंह बधुहिं जिमि ससक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहिं उचित तप मो कहुँ भोगू॥
ऐसेउ वचन कठोर सुनि जौं न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु विषम वियोग दुःख सहिहँहिं पावँर प्रान॥

यों कहकर सीताजी बहुत व्याकुल हो गयीं। उनके नेत्रोंसे गरम-गरम आँसू निकलकर धरतीको भिगोने लगे। उन्होंने सत्यवान और सावित्रीका दृष्टान्त देकर अपने वन-गमनका औचित्य सिद्ध किया और रोती हुई बोलीं—'नाथ! आप मुझे त्यागकर जब वनको चले जायँगे तो पीछे इस भारी दुःखके कारण मेरे जीवित रहनेकी आशा नहीं है। आपके विरहका शोक मुझसे एक मुहूर्त भी नहीं सहा जा सकता; फिर मैं दुःखिनी चौदह वर्ष तक इसे कैसे सहूँगी। इस प्रकार शोक-सन्तप्ता सीता करुणाजनक विलाप करती हुई पतिके हृदयसे लगकर जोर-जोरसे रोने लगीं। सीताजी दुःखके मारे अचेत-सी हो रही थीं। श्रीरामचन्द्रजीने उन्हें हाथोंसे सम्हालकर सान्त्वना देते हुए कहा—'देवी! चिन्ता छोड़ो और मेरे साथ वनको चलो। आज विषाद करनेका समय नहीं है। तुरन्त वन चलनेकी तैयारी करो। यह सुनकर सीताको

संतोष हुआ; फिर उन्होंने तथा श्री रामचन्द्रजीने भी ब्राह्मण आदिको धन, रत्न और गौएँ आदि दान दीं। तदनन्तर राम, लक्ष्मण और सीताने माता-पितासे मिलकर उनके चरणोंका स्पर्श किया तथा मित्रों, सम्बन्धियों, अन्तःपुरके नरनारियों तथा नगर-निवासियोंको रुलाकर वनकी ओर चल दिए। शृंगवेरमें पहुँचकर उन्होंने नावसे गंगा-पार की। उस समय निषादराज गुहने उनकी बड़ी भक्तिपूर्वक सेवा की। वहाँसे प्रयागमें जाकर तीनों एक रात भरद्वाज मुनिके आश्रमपर रहे। दूसरे दिन मुनिसे विदा लेकर वे संगमपर गये और वहाँसे जमुनाके किनारे-किनारे कुछ दूर पश्चिम तक चले गये। उस समय वहाँ कालिन्दीका स्रोत बड़ी तीव्र गतिसे प्रवाहित हो रहा था। दोनों भाइयोंने जंगलके सूखे काठ बटोरकर उन्हींके द्वारा एक बहुत बढ़ा बेड़ा तैयार किया और उसीके द्वारा जमुना पार की। पार होकर वे श्यामवट के पास पहुँचे। सीताजीने उस महावृक्षको प्रणाम करके उसकी परिक्रमा की; फिर सब लोग वहाँसे आगे बढ़े। चित्रकूटके पास ही महर्षि वाल्मीकिजीका एक आश्रम था। उस आश्रमपर पहुँचकर तीनोंने महर्षिको प्रणाम किया। महर्षिने भी उनका यथावत् स्वागत-सत्कार किया। श्रीरामकी आज्ञासे लक्ष्मणने चित्रकूटके कामदगिरिपर एक सुन्दर पर्णशाला बनायी। वे तीनों उसी कुटीमें सुखपूर्वक रहने लगे। सामने पर्वतका हरा-भरा प्रदेश था और नीचे कल-कलनादिनी मन्दाकिनी बह रही थीं। श्रीरामके वनमें चले जानेके बाद दशरथजी उनका वियोग न सह सके। वे उन्हींका नाम लेते स्वर्गवासी हो गये। तदनन्तर केकय देशसे भरत और शत्रुघ्न बुलाये गये। रामका वनवास और पिताका परलोक-गमन इन दोनों घटनाओंको सुनकर वे दुःखसे अधीर हो उठे और फूट-फूटकर रोने लगे। भरतने अपनी मातासे बोलना तक बन्द कर दिया और श्रीरामको लौटा लानेके लिए वे वनमें जानेको उद्यत हो गये। उनके साथ माताएँ, मन्त्री, गुरु वशिष्ठजी, कुछ पुरवासी तथा चतुरङ्गिनी सेना भी चली। भरत और शत्रुघ्नने पैदल ही यात्रा की। चित्रकूट पहुँचकर वे दोनों भाई रघुनाथजीके चरणोंमें गिर पड़े। श्रीरामने उन दोनोंको उठाकर हृदयसे लगा लिया। चारो भाई परस्पर मिलकर आँसू बहाने लगे। उस समय वहाँ प्रेम और करुणाका समुद्र उमड़ रहा था। भरत और शत्रुघ्नने सीताके चरणोंको भी स्पर्श किया। तत्पश्चात् श्रीरामने आगे बढ़कर माताओं और गुरुजनोंको प्रणाम किया। सब लोग श्रीरामसे मिलकर नेत्रोंसे अश्रुवर्षा करने लगे। भरतने श्रीरामसे अयोध्या लौटनेके लिए बहुत आग्रह किया; पर वे पिताके सत्यकी रक्षाके लिए लौटनेको राजी न हुए। उन्होंने पिताके मृत्युका समाचार सुनकर दुःख प्रकट किया और मन्दाकिनीके तटपर पिण्डदान और तर्पण किया। इसके बाद बहुत समझा-बुझाकर श्रीरामने भरत आदि सबको लौटाया। भरतजीने नन्दिग्राममें रहकर एक सिंहासनपर श्रीरामकी चरणपादुकाएँ स्थापित कीं और स्वयं मुनिवेषमें रहकर तपस्या करते हुए एक सेवककी भाँति राज्यका कार्य देखने लगे।

भरतके लौट जानेपर श्रीरामजी बहुत दिनों तक मन्दाकिनीके तटपर रहे। एक दिन इन्द्रका पुत्र जयंत कौएका रूप धारण करके वहाँ पर आया। उस समय श्रीराम सीताकी गोदमें मस्तक रखकर सोये हुए थे। कौएने सीताके शरीरमें चोंच मार दी। इससे रक्तकी बूँदें

गिरने लगीं। श्रीराम सहसा जग पड़े और उन्होंने कौएको कठोर दण्ड देनेका विचार किया। उन्होंने कुशकी चटाईमें-से एक कुश निकाला और उसे ब्रह्मास्त्रके मन्त्रसे अभिमन्त्रित किया। फिर तो वह कुशमय वाण कालाग्निके समान प्रज्ज्वलित हो उठा। कौआ डरके मारे भागा और तीनों लोकोंमें भागता फिरा। किन्तु कहीं भी वाणने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अन्तमें वह श्रीरामचन्द्रजीकी ही शरणमें आकर गिरा। यह देखकर उन्हें दया आ गयी। उन्होंने कौएको मारा नहीं; किन्तु ब्रह्मास्त्रकी सफलताके लिए उसकी दाहिनी आँख नष्ट कर दी। इस प्रकार कुछ समय तर्क चित्रकूटपर निवास करनेके बाद वे वहाँसे अन्यत्र चले गये। जाते-जाते वे तीनों अत्रि मुनिके आश्रमपर पहुँचे। मुनिने श्रीरामका तथा उनकी पत्नी अनसूयाने सीताका भली-भाँति सत्कार किया। उस समय अनसूयाने सीताको सतीधर्मका बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। फिर दिव्य वस्त्र, आभूषण और अङ्गराग भी भेंट किये। यहाँसे विदा होकर वे लोग जब आगे बढ़े तो विराध नामक राक्षससे उनका सामना हुआ। उसे मारकर वे आगे बढ़े। उस विशाल वनमें सीताके साथ विचरण करते हुए श्रीराम और लक्ष्मण शरभङ्ग मुनिके आश्रमपर जा पहुँचे। उनसे मिलकर और उनका आतिथ्य ग्रहण करके श्रीरामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मुनिको ब्रह्मलोक भेज दिया तथा राक्षसोंके द्वारा सताये हुए मुनियोंको सान्त्वना दे वे आगे बढ़कर क्रमशः अगस्त्यके भाई एवं अगस्त्य मुनिके आश्रमपर गये। महर्षि अगस्त्यने उन सबका सत्कार करके उन्हें दिव्यास्त्र भेंट किया। तदनन्तर उन्हींकी सलाहसे सीतासहित राम और लक्ष्मण पञ्चवटीमें गये और वहाँ गोदावरीके तटपर एक सुन्दर आश्रम बनाकर रहने लगे। सीताजी इस वनमें बड़े आनन्दसे रहने लगीं। वहाँकी प्राकृतिक जलवायुमें उनका स्वास्थ्य और सौन्दर्य खिल उठा। वे अपनी दिव्य कान्तिसे उस वनको प्रकाशित करने लगीं। भाँति-भाँतिके वन-विहङ्गमोंका मधुर कलरव उनके मनको बहुत भाता था। विहङ्गोंके चञ्चल बच्चे उनकी क्रीडाके साधन थे। वे ऋषिकन्याओंके साथ गोदावरी तथा झरनोंके जलमें स्नान करतीं और फूल चुनती थीं। वनके सौन्दर्यके साथ उनका प्राण एक-रस हो गया। वे पतिके साथ वहाँके रमणीय प्रदेशोंमें इच्छानुसार घूमतीं तथा मन, वाणी और क्रियाद्वारा सब प्रकारसे श्रीरघुनाथजीकी सेवा करके जन्म और जीवनको सफल बनाती थीं।

कहते हैं, मनुष्यके दिन सदा एकसे नहीं रहते। दुःखके बाद सुख और सुखके बाद दुःख आते रहते हैं। सीताने वनवासके दुःखमें भी जो यह शान्तिपूर्ण सरस जीवनका सुख प्राप्त किया था, वह भी दुर्दैवसे देखा न गया। वह विपरीत वातावरणकी सृष्टि कर रहा था। रावणकी बहिन शूर्पणखा, जो जनस्थानमें रहा करती थी, एक दिन पञ्चवटीमें आयी। उसने सीताके अमृतमय-जीवनमें विषका एक ऐसा स्रोत बहाया, जिसने उनके सम्पूर्ण जीवनको दीर्घकालके लिए विषाक्त एवं दुःखमय बना दिया। वह सुन्दरी स्त्रीका रूप धारण करके श्रीरामके पास आयी और उनसे हठपूर्वक विवाहकी इच्छा प्रकट करने लगी; इतना ही नहीं, उसने सीताको मार डालनेकी भी कुचेष्टा की। यह देख श्रीराम कुपित हो उठे। उन्होंने

स्त्रीको अवध्य जानकर लक्ष्मणसे कहा—'इसे कुरूप बना दो।' लक्ष्मणने तलवार उठायी और उसके नाक-कान काट लिये। फिर तो उसने अपना भयानक राक्षसी रूप प्रकट किया और जनस्थानमें जाकर खर, दूषण एवं त्रिशिराको रामसे लड़नेके लिए बुला लायी। उनके साथ चौदह हजार राक्षसोंकी सेना थी। वे सबके सब श्रीरामके हाथसे मारे गये। तब शूर्पणखाने लङ्कामें जाकर रावणको उभाड़ा। रावण मारीच नामक राक्षसको साथ लेकर पञ्चवटीमें आया। उसने मारीचको सोनेका मृग बनाकर सीताके सामने भेजा। सीताकी इच्छासे श्रीराम उस मृगको मारनेके लिए आगे बढ़े। मृगके पीछे-पीछे वे आश्रमसे बहुत दूर निकल गये। इतनेमें श्रीरामके बाणोंसे आहत होकर उस राक्षसने कातर स्वरसे श्रीलक्ष्मणका नाम लेकर पुकारा। वह आर्तनाद सुनकर सीता श्रीरामपर विपत्ति आनेकी सम्भावनासे सिहर उठीं। उन्होंने लक्ष्मणको शीघ्र अपने भाईके पास जानेका आदेश दिया। लक्ष्मणके चले जानेपर रावणको मौका मिला। वह भिक्षुकका रूप धारण करके शीघ्र ही सीताके पास गया। उसके शरीरपर साफ-सुथरा गेरुए रङ्गका वस्त्र था। मस्तकपर शिखा, हाथमें छाता, बायें कन्धेपर डण्डा और पैरोंमें जूते थे। उसने डण्डेमें ही कमण्डलु लटका रखा था। सीताने उसे कोई साधु समझा और आसन, पाद्य, अर्घ्य एवं फल-फूल देकर उसका यथायोग्य सत्कार किया। रावणके पूछनेपर सीताने अपना विस्तृत परिचय दिया और कहा—'विप्रवर! आप थोड़ी देर विश्राम करें। मेरे स्वामी जङ्गलसे फल-मूल लेकर आते ही होंगे। तबतक इस दण्डकारण्यमें अपने आनेका उद्देश्य बताइये।'

रावणने बड़े गर्वके साथ अपना परिचय दिया और सीताको अपनी पटरानी बनानेका प्रलोभन देने लगा। दुराचारी रावणकी पापपूर्ण बातें सुनकर सीताकी आँखें क्रोधसे लाल हो गयीं। वे सिंहनी-सी गरज उठीं और बोलीं—ओ अभागे! तेरी इतनी हिम्मत! तू श्रीरघुनाथजीकी प्यारी पत्नीका अपहरण करना चाहता है। क्या अपने गलेमें पत्थर बाँधकर समुद्रको पार करना चाहता है। जलती हुई आगको कपड़ेमें बाँध ले जाना चाहता है। तू गीदड़ है और मैं सिंहकी पत्नी हूँ। मैं तेरे लिए सर्वथा दुर्लभ हूँ। तू पुलस्त्य मुनिके कुलमें कलंक लगानेवाला है। कौन कह सकता है कि तू महात्मा विश्रवाका पुत्र है। अपनेको कुबेरका भाई बताते तुझे शर्म नहीं आती? जिन राक्षसोंको तेरे-जैसा पापात्मा राजा मिला है, उनका विनाश अवश्यम्भावी है। इस सूने आश्रममें तू चोरकी तरह चला आया, क्या यही तेरा पुरुषार्थ है? मेरे शरीरपर हाथ लगाया तो तेरे राज्य और जीवनका विनाश ध्रुव है। मेरा अपमान करके तू अमृतपान कर ले तो भी तेरे प्राणोंकी रक्षा नहीं हो सकती। मेरे सामने वीरताकी बड़ी-बड़ी बातें बघारता है। यदि साहस है तो थोड़ीदेर और रुक जा। मेरे स्वामी अब आना ही चाहते हैं।' सीताके ये वचन सुनते ही रावण क्रोधसे जल उठा। देर करनेसे श्रीरघुनाथजीसे सामना होनेका भय था; इसलिए उसने बड़ी फुर्तीके साथ सीताको उठाकर रथ पर बिठा लिया और द्रुतगतिसे भाग निकला।

●

साहित्यका निर्माण समाजके लिए हितकर उत्साहप्रद और मार्गदर्शक हो—

साहित्कारका दायित्व

श्रीगोविन्द शास्त्री

★

शेक्सपीअरके नाटकोंको पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो उसने युगका ही प्रवर्तन किया है। साहित्यके मूलभूत सत्यं शिवं सुन्दरम्में उसने आत्महन्ता पात्रोंकी सृष्टि की, युद्धमें शौर्य-प्रदर्शनके स्थानपर उसने हत्या और हत्याके षड्यन्त्रोंका वर्णन किया। यह सब उसने इस दृष्टिसे किया कि पाठक अथवा दर्शकके समक्ष वह अशिवको यथार्थ रूपमें रखकर शिवकी गरिमाको प्रभावशाली रूपमें चित्रित कर सके। वस्तुतः जबतक तुलनात्मक पात्रोंकी सृष्टि नहीं होती, तबतक श्रेणी-भेद करना सरल नहीं होता। सामान्य अथवा विशेष रूपसे यह प्रवृत्ति विश्ववाङ्मयके प्रत्येक साहित्यमें पायी जाती है, किन्तु सफेदमें चमक लानेके लिए काले रंगको उभारना एक बात है और कालेको ही इस सीमातक गहरा कर देना कि उससे सफेद कालेका पोषणमात्र बनकर रह जाय, यह दूसरी बात है। रामके चरित्रको श्रेष्ठ बतलानेके लिए रावणके चरित्रकी सृष्टि आवश्यक है, किन्तु उसके चरित्रको इस सीमातक ले जाना कि वही पाठकके मनपर छा जाय यह दूसरी ही प्रवृत्तिका द्योतक है। घना अन्धकार यदि प्रकाशकी पृष्ठभूमि है, तो वह स्वागतयोग्य है, इसके विपरीत यदि उसमें इतनी गहनता है कि व्यक्ति यदि उसे ही प्रकृतिके रूपमें स्वीकार कर लेनेको विवश हो जाता है तो यह स्पृहणीय नहीं हो सकता।

साहित्यकार समाजका मूर्धा होता है। समाजको दिशा दिखाना उसीका काम होता है। आज साहित्यकी सर्वतोमुखी प्रगति मानवकी चिन्तनशीलता और बौद्धिक विकासका प्रमाण है, किन्तु आज जिन पात्रोंकी सृष्टि हो रही है, वे खण्डित हैं, आस्थाहीन घटकोंमें एक स्पष्ट विशृंखलता है। कुण्ठाएँ दोषपूर्ण सामाजिक संरचनाका प्रतिफल हैं। व्यक्ति-स्वातन्त्र्यका आघात करके समाजने जो शुष्क विशीर्णन प्राप्त किया है वही प्रतिबिम्बित हो रहा है सामयिक साहित्यमें।

आजकी युवा पीढी अतीतको अर्थहीन समझकर उसे पराया मान बैठी है। वह यह भी सुननेके लिए तैयार नहीं है कि हम उसी अतीतके चबूतरेपर बैठे हैं। उसके सामने तो केवल आज है और आजमें उनके कल्पित सुख हैं। यदि कभी उनसे यह कहा जाय कि हमें अपने देशकी आस्थाओंको अपनाना है, सुखी समाजके लिए नैतिकताके सनातन मूल्योंको धर्मके रूपमें व्यवहार करनेयोग्य बनाना है, तो इसका उत्तर मिलता है 'ईमानदार तो जो ही नहीं सकता। फिर जब सारा देश ही बेईमानीका सहारा ले रहा है तो हम देशके वातावरणके खिलाफ कैसे जा सकते हैं? जमानेके साथ नहीं चलेंगे तो पिछड़ जायेंगे।'

इस उत्तरमें युवा पीढीका आक्रोश है पुरानी मान्यताओंके प्रति और सामयिक सन्दर्भका आग्रह है जीवनके प्रति। वे इसीलिए उस अतीतको भूल जाना चाहते हैं, क्योंकि उन

गौरवपूर्ण परम्पराओंसे उनके मनमें द्वन्द्व उपजता है। इसलिए वे अपने आपको उस प्राक्तन श्रृंखलामें जुड़ा हुआ माननेके लिए ही तैयार नहीं हैं। यद्यपि देशकी सामयिक विरूपताओंके अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु क्या पिछड़ जानेका तर्क देकर एक सत्यको भी अस्वीकार किया जा सकता है? बृहत्तरका नाम लेकर क्या लघुतर अपने अस्तित्वको भूल सकता है? पिछड़नेका प्रश्न तो अपने आपमें कोई अर्थ ही नहीं रखता, क्योंकि नैतिकता और भौतिक प्रगति अपने आपमें कोई सम्बन्ध नहीं रखतीं। नैतिकताका ह्रास भौतिक प्रगतिमें सापेक्ष कारण नहीं बना। यह तो धारणाओंकी अपरिपक्वता है अथवा हम किन्हीं विरूपित तथ्योंको ही जीवनका आदर्श समझ बैठे हैं।

मूल प्रश्न यह रह जाता है कि अतीतका बूढ़ा रूप जो आज हमारे रूपमें है, कि वा आजका परिणाम भूतपरसोंका स्वरूप यह युवा पीढी इस रूपमें कुण्ठित क्यों हो चुकी है? श्रेयपरक सत्यको स्वीकार करनेका साहस भी उसमें नहीं रहा। उस यथार्थ स्थितिके लिए वह भ्रान्त तर्कोंका सहारा लेकर अपनी असमर्थताको क्यों छुपा रही है? जीवनका अर्थ उसने केवल अर्थ ही क्यों समझ लिया है? और अर्थके लिए उसने अनर्थकारी अनैतिक व्यापार को ही क्यों अनिवार्य मान लिया है? इस प्रकारकी प्रवृत्ति मनु और गीताके वंशधरों व अनुयायियोंमें किस तरह स्थान पा सकी यही एक विचारणीय विषय है।

थोड़ी गंभीरतासे यदि विषयको समझा जाय तो यह समझमें आनेलायक ही बात है। आजकी धारा समाजके उस उपेक्षणीयको उभारकर चल रही है जिसका तिरस्कार करना चाहिए था। साहित्यमें उन चित्रोंको उभारकर रखा जा रहा है जो कुण्ठित हैं, त्रस्त हैं, विडम्बित हैं। वे विडम्बित पात्र पाठकमें उद्दाम आवेशका संचार नहीं कर पाते। विवशताओंमें जकड़े वे मुखौटे महज दयनीय बनकर आते हैं। मनुष्यके नैसर्गिक पुरुषार्थको कचोटकर जगानेकी शक्ति उनमें है ही नहीं। सामाजिक और सामयिक वृत्तोंमें उलझे पात्र अपनी शक्तियोंसे ही अपरिचित हैं। कहनेको यह कहकर आत्मतोष भले ही कर लिया जाय कि आजका लेखक अति यथार्थवादी हो गया है किन्तु उसका यह यथार्थ समाज के लिए, पात्रोंके लिए और पाठकके लिए क्या दिशा-दृष्टि लेकर आता है? उस लेखनका उद्देश्य समाजके लिए किस सीमातक हितकर ठहरता है? इस यथार्थका एक ही परिणाम सामने आता है कि सीताको खोजने गये दलके सभी दूत सागरके किनारे बैठे हैं। सागरकी विशालतासे हतप्रभ, अपने पौरुषसे अपरिचित। सागरका और दूतोंका सामर्थ्यका अति यथार्थवादी चित्रण करनेसे लेखककी सार्थकता सिद्ध नहीं होती। सही अर्थोंमें लेखककी उपादेयता तभी सिद्ध होगी जब वह युवराज अंगद बनकर आयेगा। हर व्यक्तिमें हनुमान् छुपा है, प्रत्येक लक्ष्य कुशल नाविककी प्रतीक्षा कर रहा है, आवश्यकता है हनुमान्को हनुमान्के रूपमें तैयार करने की। उन कल्पित सामाजिक सीमाओंका अतिक्रमण करनेका साहस यदि कथाकारके पात्रोंमें नहीं है तो वे पात्र कदर्य हैं और लेखक एक सतही विवेचन मात्र प्रस्तुत कर रहा है, वह आदरणीय नहीं है।

इस प्रकारकी असमर्थताओंने व्यक्तिको पराभूत कर दिया है, समूचा राष्ट्र एक ही

आयामसे देखनेका आदी हो गया है। कलकी-सी बात लगती है जब सारे राष्ट्रने भ्रष्टाचार-विरोधी नारे लगाये थे। अखबारोंमें भ्रष्टाचारके इतने चित्र, प्रचार और उदाहरण प्रकाशित किये गये थे कि एक बार तो यह भ्रम हो गया था कि हमारा देश वास्तवमें भ्रष्टाचार ही है। इतने व्यापक प्रचारको देखकर यह अनुमान लगाना स्वाभाविक ही था कि इतने बड़े राष्ट्रमें शायद सदाचार कहीं है ही नहीं; पर उस आयोजनका परिणाम कुछ भी नहीं निकला।

वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी, अब भी है। कारण क्या है? कारण कोई गूढ़ नहीं है, सामने है। उस प्रचारसे केवल रावणका बलशाली अस्तित्व सामने आया, जो नहीं जानते थे वे भी जान गये कि भ्रष्टाचारमें इतने-इतने बड़े पड़े हैं किन्तु उसके समानान्तर चरित्रकी रचना नहीं की गयी। भ्रष्टाचारके रावणका ही ख्यापन किया गया, सदाचारके रामका अवतार हुआ या नहीं—यह नहीं बतलाया गया। आज भी प्रायः यह रिपोर्ट प्रकाशित होती है कि अमुक राज्यमें इतने भ्रष्ट अधिकारियोंको दण्डित किया गया पर शायद सदाचारी अधिकारियोंको पुरस्कृत करनेकी कोई व्यवस्था नहीं है। प्रतिपल लोग मरते हैं पर उन मरनेवालोंको देखकर जीवित व्यक्ति जीवनसे निराश नहीं होते। आज यह भी एक अभ्यस्त घटना हो गयी है और हमारे मनमें बैठ गयी है कि जो पकड़ा जायगा वही चोर होगा इसलिए हाथ-पैर बचाकर चोरी करते रहो।

कितना अच्छा होता यदि भ्रष्टाचारके लिए अथवा उस तथाकथित भ्रष्टाचारके निरोधके लिए जितना समय, श्रम और धन खर्च किया जाता है उतना यदि सदाचारके प्रोत्साहनपर खर्च किया जाता तो लोग सदाचारको संहितापर ध्यान देते। किसी रेखाको छोटा करनेका एक यही तरीका थोड़े ही होता है कि उसे काटा जाय, उसके समानान्तर दूसरी रेखा खैंचनेपर भी तो वह छोटी पड़ जाती है। किसी पुराने मकानमें आनेसे रोकना अच्छी बात हो सकती है किन्तु इसके स्थानपर यदि जानेवालोंके लिए कोई नया मकान बनवा दिया जाय और उन्हें उस नये मकानमें जानेके लिए प्रोत्साहित किया जाय। पहली विधिमें निषेध है, दूसरोमें विधेय है। व्यक्ति स्वभावतः विधेयको अधिक सरलताके साथ स्वीकार करता है।

कतिपय दिग्भ्रान्त कुलेखकोंकी निकृष्ट कृतियोंकी माँग है जब कि उनके उपन्यासोंका साहित्यिक दृष्टिसे कोई मूल्य नहीं। उपन्यासका शौकीन युवावर्ग उनके नामके पीछे ही दीवाना है। यह वास्तवमें बौद्धिक दीवालियापन है। इस प्रकारकी कृतियोंका पीढ़ीपर क्या प्रभाव पड़ेगा? इस दायित्वको सोचे समझे बिना ही इसे व्यवसाय बुद्धिसे किया जा रहा है और व्यवसाय तो बस व्यवसाय है, उसमें व्यक्तिकी विशाल तृष्णा है, अर्थकी आँधीमें बह रहे व्यवसायी (चाहे वे लेखक हैं, या प्रकाशक) कभी भी देशीय स्तरपर या जातिके हितकी सीमातक सोचना ही नहीं चाहते। यह एक हल्का विष है जो वर्तमान पीढ़ीको दिया जा रहा है। वैसे बाजारमें इससे तीव्रतर विष भी बिक रहा है। कुछ पुस्तकें लेखक-प्रकाशकके नामके बिना चल रही हैं, कुछमें कल्पित नाम हैं तो कुछमें सही नाम पते। इनमें सामग्री भी उसी अनुपातमें ग्रामीण और अश्लीलताकी सीमा पार करती हुई होती हैं। छात्र-

छात्राएँ अपनी पाठ्यपुस्तकोंमें छुपाकर उनको रखते हैं और वासनाओंके ज्वारमें भटकते हुए उन पुस्तकोंकी नारकीय कल्पनामें खोये रहते हैं। कुछ पत्र ऐसे भी देखनेमें आये जिनके शीर्षक, जिनकी सामग्री स्पष्टतः समाजके लिए घातक हैं। और तो और अमरीकाके अनुकरण पर आज भारतमें भी ब्लू प्रिंट फिल्में प्रचारमें आ गयी हैं जिनमें केवल काम-वासनाको, रति-क्रियाओंकी सचित्र व्याख्या की जाती है। इस प्रकारकी फिल्मोंका तो खैर सीमित ही उपयोग है पर पत्र अवश्य प्रचारमें आ रहे हैं और इस उत्तेजनाके बढ़ावा देनेकी नीतिके कारण ही वे मँहगे दामों पर बिकते हैं। उन पत्रोंके सम्पादक यत्र-तत्र यह दर्शाकर अपनी पत्रिकाके लेखोंका औचित्य सिद्ध करनेसे नहीं चूकते कि समाजमें व्याप्त इस जुगुप्साको दूर करना है। देशके युवक-युवतियोंको मार्गसे भ्रष्ट होनेसे रोककर उन्हें सही मार्ग दिखाना है पर उनका यह उद्देश्य केवल छल है, इस प्रचारके पीछे वासना उभाड़ कर पैसे पैदा करना ही उनका लक्ष्य है, यदि उनका लक्ष्य व्यवसाय नहीं होता, अर्थसिद्धि नहीं होता तो वे उस जुगुप्सित पक्षको इस रूपमें नहीं उभारते।

हर व्यक्ति राम और रावण दोनों ही है। देवासुर संग्राम इसी पिण्डमें होता रहता है। मनीषीका यह पावन कर्तव्य होता है कि वह मानवमें छुपे देवत्वकी प्रतिष्ठा करे, आसुरी प्रवृत्तियोंकी निन्दा करे और विवेकको जागृत करे। एक पीढ़ीको द्वन्द्वमें न उलझाकर उसे प्रशस्त राजमार्गका अंगुल्या निर्देश करे।

कितना अच्छा होता यदि आजका लेखक और बुद्धिवादी सनसनी खेजीके पीछे यों हाथ धोकर नहीं पड़ता। यह प्रवृत्ति भारतीय नहीं है। पश्चिमी, भौतिकवादी सभ्यताको स्वीकार करके हमने आत्महनन किया है और आज भी उस मार्गको छोड़नेके लिए तैयार नहीं हैं। इसका परिणाम यही सामने है कि हम जीवनके सत्यसे दूर होने जा रहे हैं, साहित्यके शिवसे छिटकते जा रहे हैं। हमारा राष्ट्रीय चरित्र भी उखड़ता जा रहा है।

समाचार-पत्रोंमें भी अनुपाततः सनसनी खेज समाचारोंको प्राथमिकता दी जाती है। चोरी, व्यभिचार, धोखादेही आदि समाजविरोधी या असामाजिक समाचारोंको ढूँढ-ढूँढकर प्रकाशित किया जाता है। इनसे हम किस विकासका परिचय देना चाहते हैं—यह तो वे ही जानें पर यहाँ सही दृष्टिकोण नहीं है। अच्छी होती यदि ऐसी विकृत घटनाओंके साथ-साथ ईमानदारी, सत्य, आदर्श और मानवताका सच्चा चित्र उपस्थित करनेवाली घटनाओंकी भी प्रतिष्ठा की जाती। मेरा अर्थ यह नहीं है कि देशमें इस प्रकारके समाचार पत्र हैं ही नहीं जो आदमीके उज्ज्वल पक्षका प्रचार करते ही नहीं हैं—ऐसे भी हैं किन्तु देशकी विशालताके अनुपातमें नगण्य हैं।

किसी घड़े, (जो आधा भरा है) उसके लिए दोनों ही स्थितियाँ सत्य हैं, वह आधा भरा है, आधा खाली है पर भरा कहने में स्वीकृति है और रीता कहनेमें अस्वीकार है। आज देशकी चिन्तनधारा इसी अस्वीकारकी ओर उन्मुख है। जबतक इस निषेधसे हटकर विधेयकी ओर नहीं देखेंगे तबतक समस्याका समाधान नहीं होनेका।

●

जगदगुरु श्रीशङ्कराचार्य

(जिनकी जयन्ती वैशाख शुक्ला पञ्चमीको है)

श्रीसुधाकर दीक्षित न्यायाचार्य

★

श्रीआद्यशङ्कराचार्यजी इस युगके महान् तपस्वी, पावनचेता, अतुलनीय प्रतिभासे सम्पन्न, विभिन्न विद्याओं एवं गुणोंसे अलङ्कृत तेजस्वी महापुरुष रहे हैं। आप भारतवसुन्धरा-पर अवतीर्ण होकर—

स्वयमाचरते यस्तु आचारे स्थापयत्यपि।
आचिनोति च शास्त्रार्थानाचार्यस्तेन चोच्यते॥

(लिङ्गपुराण)

(जो स्वयं आचरण करे, लोगोंको आचारमें स्थापित करे और शास्त्रार्थोंका सञ्चयन करे वही आचार्य है) इसके अनुसार सही अर्थमें आचार्यके रूपमें प्रसिद्ध हुए तथा समस्त विश्वके लिए शाश्वत सुख एवं शान्तिका अनुपम मार्ग प्रदर्शित कर गये।

हमारे यहाँ अनादि अपौरुषेय वेद एवं तन्मूलक विभिन्न शास्त्रों, स्मृतियों तथा निबन्धग्रन्थोंमें संसारके रुचिवैचित्र्यको दृष्टिमें रखकर ऐहलौकिक एवं पारलौकिक प्रेम तथा श्रेयको यथार्थ रूपमें प्राप्त करनेके लिए विभिन्न उपायोंके रूपमें शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश, दुर्गा आदि विभिन्न देवताओंकी उपासना—आराधनाका साङ्गोपाङ्ग निरूपण किया गया है। इन सभी रूपोंमें एक ही परमेश्वरकी उपासना की जाती है। **'सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति।'** अथवा **'नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।'** इस न्यायसे सभी देवताओंकी आराधनाका उद्देश्य और फल समान है; तथापि कालक्रमसे विवेकहीनताके कारण लोगोंमें हठधर्मिता आ गयी और लोग अपने सिवा दूसरोंके उपास्य तथा उपासना पद्धतिकी निन्दा करते हुए परस्पर झगड़ने लगे। जब विभिन्न शाखाओंमें पारस्परिक मतभेद-की भावना अपनाकर प्रायः नये-नये सङ्घर्ष सामने आने लगे तब यह आवश्यक हो गया कि प्रबल प्रमाणों एवं अकाट्य युक्तियोंद्वारा पारस्परिक सङ्घर्ष समाप्त किये जायँ तथा यथासम्भव सभी शाखाओंका परस्पर सामञ्जस्य स्थापित किया जाय। अवैदिक मतावलम्बियोंसे वैदिक मतके संरक्षणका प्रश्न भी अत्यन्त विकट रूप धारण कर रहा था। इन्हीं आवश्यकताओंको यथार्थ रूपमें पूर्ण करनेके लिए आचार्य शङ्कर इस धराधामपर अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपनी प्रबल युक्तियोंद्वारा उस कालमें सनातन वैदिकधर्मको भारतवर्षमें बद्धमूलकर उसका सुमधुर सौरभ समस्त विश्वमें प्रसारित करनेका सफल प्रयास किया। आचार्य शङ्करसे सम्बद्ध महत्त्वपूर्ण घटनाएँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि उनकी यहाँ चर्चा पुनरुक्ति-मात्र ही होगी। उनके अलौकिक जीवनके परिचयके लिए यह एक श्लोक ही पर्याप्त है—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात्॥

इस भारतवसुन्धराको उन्होंने ३२ वर्ष तक ही अलङ्कृत किया और इस अल्पकालमें ही उन्होंने कितने ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये। आठवें वर्षमें ही चारों वेदोंका अध्ययन पूर्ण कर लिया और बारहवें वर्षमें ही सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हो गये, सोलहवें वर्षमें उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता तथा उपनिषदोंपर भाष्य-ग्रन्थोंकी रचना की और बाईसवें वर्षमें अपने पारमार्थिक स्वरूपमें लीन हो गये। इतने-से ही उनकी अलौकिक शक्तिका परिचय हमें प्राप्त हो जाता है। वस्तुतः श्रीशङ्कराचार्यने सनातनधर्मकी नींव सुदृढ़ करनेके लिए इतना ठोस एवं व्यापक कार्य किया है कि आज एक लम्बी अवधि व्यतीत हो जानेपर भी उनकी उपयोगिता उसी रूपमें प्रतीत हो रही है जिस रूपमें उनके समयमें थी।

आजसे लगभग १३ सौ वर्ष पहले शङ्कराचार्यका आविर्भाव केरल प्रान्तके कालपी ग्राममें एक नम्बूदरी ब्राह्मणके कुलमें हुआ था। उनकी जयन्तीतिथि वैशाख शुक्ल पञ्चमी है। उनके पिताका नाम श्रीशिवगुरु था तथा माताका नाम सती देवी। ये दोनों पुण्यचरित थे।

भगवत्पाद शङ्कराचार्यने अपने यहाँके विभिन्न प्रस्थानोंमें-से किसीको भी हेय या गर्हित नहीं सिद्ध किया, पर उन प्रस्थानोंसे सम्बद्ध विभिन्न मतोंकी हठधर्मिताका अवश्य निराकरण किया। कर्ममीमांसाका भी चित्तशुद्धिके लिए उन्होंने प्रामाण्य स्वीकार किया, पर उनका सिद्धान्तपक्ष यही था कि निर्विशेष निर्गुण ब्रह्म ही सत्य है। वह सदसद्विलक्षण है, उसमें व्यावहारिक सत्यत्व सर्वथा मान्य है, जैसा कि स्वयं शङ्कराचार्यने ही स्पष्ट कर दिया है—

मिथ्याशब्दो नापह्नववचनः किन्त्वनिर्वचनीयतावचनः।

आचार्य शङ्करने अपने इस सिद्धान्तपक्षको बड़ी ही सरलताके साथ इतना स्पष्ट किया कि उसकी लोकप्रियता सर्वाधिक रूपमें सभीको मान्य है।

अधिकतर यह आक्षेप उठाया जाता है कि श्रीशङ्कराचार्यके सिद्धान्तने सबको अकर्मण्यताकी ओर बढ़ाया, पर विचार करनेपर स्पष्ट है कि उनका सिद्धान्त मानवको सोत्साह कार्यक्षेत्रमें प्रवृत्त करता है, साथ ही उसे फल एवं अधिकारकी दृष्टिसे अनासक्त भी बनाये रखता है। आचार्यका यह सिद्धान्त श्रीवेदव्यासके ब्रह्मसूत्र तथा योगवासिष्ठ आदिमें पहलेसे ही वर्णित एवं चर्चित है। केवल इस युगमें उसे एक नूतन एवं आकर्षक परिवेषके साथ जगत्के समक्ष उन्होंने प्रस्तुत कर दिया।

मानवकी मर्यादा यही है कि वह देश-धर्मके हित स्वयंको संशयमें डालकर भी सोत्साह महान्से भी महान् कार्य सम्पन्न करें, पर यह उन लोगोंसे कथमपि सम्भव नहीं है, जो लोग देहको ही सर्वस्व मान बैठे हैं। भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें कहा है—"इमं राजर्षयो विदुः" अर्थात् विवस्वान् मनु, इक्ष्वाकुप्रभृति राजर्षि इस तत्त्वको जानते थे। धर्म तथा राष्ट्ररक्षाका भार इन राजाओंपर ही था। यदि वे लोग प्रपञ्चातीत, निर्विघ्न आत्मबोधके सहारे शोकमोहातीत न हो गये होते तो राष्ट्रपालनके मार्गमें आयी हुई नाना विपत्तियोंका

सामना करनेमें समर्थ न होते। जिस समय सङ्ग्राममें विभिन्न प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे अङ्ग-प्रत्यङ्ग क्षत-विक्षत होने लगते हैं, उस समय देहात्मवादीका वहाँ टिकना बहुत ही कठिन है। देहसे भिन्न अच्छेद्य, अभेद्य, अशोष्य, निर्विघ्न आत्माको माननेवाला ही वहाँ सोत्साह ठहर सकता है, क्योंकि उसकी दृष्टिमें आत्मा अजर-अमर और देहादि क्षणभङ्गुर हैं; अतः देहादिकी थोड़ी भी चिन्ता न करके विघ्न-बाधाओंका सामना वही कर सकता है।

किसी भी महान् कार्य को सम्पन्न करनेके लिए धैर्य आवश्यक होता है। तितिक्षा आदि साधनोंमें अटल निष्ठा धैर्यके बिना सम्भव नहीं। यह धैर्य अखण्ड, अनन्त, पूर्ण आत्माके बोध बिना कैसे सम्भव है। अनन्त ब्रह्माण्डमें उथल-पुथल मच जाय, सूर्य चन्द्रमाके स्वभाव भले ही पलट जायँ, परन्तु सर्वोपद्रवविवर्जित कूटस्थ आत्मामें परिनिष्ठित पुरुष सर्वथा ही अनुद्विग्न रहता है। इसीलिए—"**अन्तस्त्यागी बहिः सङ्गी लोके विचर राघव**" के अनुसार कर्त्तव्यनिष्ठा तथा अनासक्तिका मञ्जुल सामञ्जस्य स्थापितकर हर एक मानव अपनी लोकयात्रा बड़ी ही सफलताके साथ सम्पन्न कर पाता है और भविष्यमें भी कर सकेगा। दाराशिकोहने 'रिसाल' ए हकनुमा'में स्पष्ट लिखा है कि 'कुरान'के सिद्धान्तोंको समझनेकी कुञ्जी अद्वैतप्रतिपादक उपनिषद् हैं, जिनकी ओर कुरानमें स्पष्ट रूपसे सङ्केत किया गया है। ईसाई मजहबको भी समझनेमें शङ्करका अद्वैत उपयोगी है। ईसाका उपदेश है कि अपने पड़ोसीसे प्रेम करो, परन्तु उससे हम प्रेम क्यों करें? उससे हमारा क्या स्वार्थ सिद्ध होगा? इन प्रश्नोंका उत्तर 'बाइबिल' नहीं देती। अद्वैत वेदान्त इसका उत्तर देता है—'वास्तवमें पड़ोसी भी हम सबकी आत्मा ही है, अतः उससे प्रेम करना है।' इस तरह अद्वैत एक सामान्य स्तरपर व्यवहारकी मनोरम आधारशिला है। शङ्करने अपनी युक्तिसे इसे सिद्धकर महान् कार्य किया है।

आचार्य शङ्कर कितने उच्चकोटिके विद्वान् थे, स्पष्ट करनेकी आवश्यकता नहीं, उनके ग्रन्थ तथा उनकी शिष्यसम्पत्ति इसके लिए पर्याप्त प्रमाण हैं। वे महान् कविके रूपमें भी सदा स्मरणीय हैं। व्यवहार क्षेत्रमें-सगुण ब्रह्मकी उपासनाको आचार्य महान् उपयोगी समझते थे, इसीलिए उन्होंने विभिन्न वैदिकदेवी-देवताओंकी उपासनाके लिए अनेक स्तोत्रोंका प्रणयन किया। वे संस्कृत भक्तिसाहित्यके सर्वस्व हैं। उन्हें देखकर शङ्करकी अलौकिक काव्य-प्रतिभाका सहज ही अनुमान होता है। ऐसा लगता है कि भगवत्पादका बाह्य रूप ज्ञानवादी ठोस दार्शनिकका अवश्य हैं, पर उनका हृदय रागानुगा भक्तिसे अत्यन्त स्निग्ध है, भावपूर्ण उपासनाओंकी सिद्धिसे नितान्त मञ्जुल तथा कोमल है।

महनीयचरण आचार्य शङ्करने अध्यात्मपरिनिष्ठित वीतराग परमहंस परिव्राजकोंको राष्ट्र एवं धर्मके उन्नयन, परिपोषणके लिए संसारके रङ्गमञ्चपर उतारा। उन्होंने स्वयं अपने आचरण तथा अपने साक्षात् शिष्योंको संसार-कल्याणके निमित्त प्रबल प्रेरणा देकर यह स्पष्ट किया कि योगी, संन्यासी आदि महात्माका भी मुख्य कर्त्तव्य संसारके लिए ही अपना सर्वस्व समर्पण कर देना ही है। श्रीशङ्कर सचमुच बड़े ही व्यवहारकुशल यथार्थवादी थे। उच्च-कोटिकी अध्यात्मविद्या तथा व्यवहारकुशलताका अप्रतिम समन्वय उनमें है। स्वयं उन्होंने

भविष्यमें देश-धर्म एवं उनके आधारस्तम्भ वेदोंकी रक्षाके लिए संन्यासियोंको सङ्घ रूपमें सङ्घटित किया तथा भारतके धर्मके प्रेरणास्रोत चारों धामोंमें चार मठोंकी स्थापना की—शृङ्गेरीमठ (दक्षिणभारत मैसूरमें) गोवर्धनमठ (जगन्नाथपुरीमें) शारदामठ (द्वारकामें) तथा ज्योतिर्मठ (बदरीधाम—विख्यात नाम जोशीमठ)। इन चारों संस्थाओंने आचार्यके लक्ष्यकी पूर्त्ति उपयुक्त ढङ्गसे की है। इतिहास साक्षी है कि यथासमय शृङ्गेरीके अध्यक्ष श्रीविद्यारण्य स्वामी आदि वीतराग संन्यासियोंने हरिहर तथा बुक्कराय आदिको उत्साहित कर वैदिक सनातनधर्मकी रक्षा की। उपर्युक्त पीठोंके अध्यक्ष अपना यह गम्भीर उत्तरदायित्व समझते थे कि हर सम्भव प्रकारसे देश-धर्मको सुरक्षित रखा जाय।

आचार्य शङ्करकी बहुमुखी प्रतिभाका यथावत् परिचय प्राप्त करना बहुत ही कठिन है। एक ओर उनमें पाण्डित्यकी पराकाष्ठा है तो दूसरी ओर उनमें सरसता तथा सहृदयताकी प्रतिष्ठा है। उन्हें हम परम दार्शनिक, महान् योगी, अध्यात्मशास्त्रोंके परम निष्णात महापुरुषके रूपमें जहाँ पाते हैं वहीं सच्चे अर्थमें व्यवहारकुशल तथा यथार्थवादी भी देखते हैं। निश्चित ही उनका पवित्र उद्देश्य विश्वका शाश्वतिक मङ्गल-सम्पादन ही था और उसकी सम्पन्नतामें ही उन्होंने अपना इस लोकका जीवन समर्पित कर दिया। ऐसे महापुरुषके प्रति उनकी जयन्तीके दिन इसीलिये श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते हैं।

आजकल क्षुद्र राजनीतिका युग है। हम अपने क्षुद्र स्वार्थवश इस वाराङ्गना क्षुद्र राजनीतिको गले लगाकर सब कुछ खानेके साथ कलङ्कित तक होनेके लिए प्रस्तुत हैं, और इसी कारण विभिन्न विपत्तियोंको सहन भी कर रहे हैं; पर धार्मिक क्षेत्रकी सहज तपस्विनी सुनीतिको जो सहस्रशः श्रुतियोंसे समर्पित है पैरों तले रौंदने तकमें तनिक भी सङ्कोच नहीं कर रहे हैं, यह दुर्भाग्यका विषय है। कम-से-कम श्रीआचार्यकी जयन्तीसे हम यह प्रेरणा अवश्य प्राप्त करें कि हमें वह सुनीति ही सुख, शान्ति दे सकेगी जो अपनी कुक्षिमें राजनीति-समाजनीति आदिका मञ्जुल समन्वय कर अनादि अपौरुषेय श्रुतियोंके अनुसार हम भारतीयोंका कभी सर्वस्व थी तथा श्रीशङ्करने उसे ही अपनाकर अपनेको अमर बनाया। वास्तवमें आचार्यचरणका जीवनचरित परमार्थपथपर अग्रसर होनेवाले साधकोंके लिए बहुमूल्य सम्बल है तथा ऐहलौकिक सफलताके अभिलाषी सज्जनोंके लिए प्रशस्त मार्गका प्रदर्शक है। मुझे तो यह कहते तनिक भी संकोच नहीं होता कि शङ्कराचार्यकी जयन्ती भारतवर्षके लिए राष्ट्रीय पर्व है। शङ्करके 'अद्वैत'के आधारपर 'अमृतस्य पुत्राः'के अनुसार परस्पर समानता, स्वतन्त्रता, सहज सौभ्रात्रके भाव प्रतिष्ठापितकर शान्तजीवन व्यतीत करनेके लिए आचार्य-शङ्करके उपदेशोंको पढ़ने तथा दुहरानेकी विशेष आवश्यकता है। अतः आइये, इस वर्ष भी हम जयन्ती सोत्साह मनायें, उनके वन्दनीयचरणोंमें श्रद्धाकुसुम समर्पित करें, साथ ही उनके जीवनचरितको पढ़ें और उनके उपदेशामृतका पानकर अपने नश्वर जीवनको पूर्ण सफल बनाएं।

शङ्करं शङ्कराचार्यं केशवं बादरायणम्।
सूत्रभाष्यकृतौ वन्दे भगवन्तौ पुनः पुनः॥

वैशाखकी अमावस्याको श्रवणीय सक्तुदानी मुद्गलकी कथा—

सक्तुदान

'शङ्खपाणि'

'राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ एक उञ्छवृत्तिधारी उदार ब्राह्मणके सेर भर सक्तुदानके बराबर भी नहीं हुआ है।'

महाराज युधिष्ठिरका अश्वमेध यज्ञ बड़ी धूमधामसे सम्पन्न हुआ था। उसमें सभी श्रेष्ठ ब्राह्मण दान-दक्षिणा पाकर पूर्णतः तृप्त हुए थे। जाति-भाई, सगे-सम्बन्धी वहाँ प्राप्त हुए आदर-सत्कारसे सर्वतोभावेन सन्तुष्ट थे। दीनों, दरिद्रों और अन्धोंकी भी सेवामें कोई कसर नहीं रक्खी गयी थी। धर्मराजके उसे महान् यज्ञ और उसमें अनवरत दिये जानेवाले महान् दानका चारों ओर शोर मच गया था। तथा युधिष्ठिरके मस्तकपर आकाशसे दिव्य पुष्पोंकी वृष्टि हो रही थी। उसी समय एक नेवला कहींसे चलकर उधर आ निकला। उसकी आँखें नोली थीं और शरीरके एक ओरका भाग सुवर्णमय दिखायी देता था। दूसरे पार्श्व भागमें कीच लगी हुई थी, मानो अभी-अभी उसने भींगी मिट्टीमें लोट लगायी हो। उसने चारों ओर दृष्टि डालकर भयंकर गर्जना की और मनुष्यकी भाषामें उपर्युक्त बात कही।

यह बात सब ओर एक क्षणमें फैल गयी। सबलोग आश्चर्यचकितसे होकर वहाँ जुट गये। यत्र-तत्र काना-फूसी होने लगी 'एक नेवलेका ऐसा दुःसाहस कि यह धर्मराज युधिष्ठिरके अश्वमेध यज्ञकी सर्वोत्कृष्टताको चुनौती दे सके! जातिका नेवला, तुच्छ श्वापद और बोली बोले मनुष्य की, यह अभूतपूर्व घटना है।'

यमराज, ऋत्विज, यज्ञ, वेद और वेदविहित क्रिया-कलाप—सबके विरुद्ध खुला चैलेंज था। वैदिक कर्मकाण्डी ब्राह्मण प्रतिवादके लिए कमर कसकर आये और बोल उठे—अरे! तुझमें कितना बल और कितना शास्त्रज्ञान है? तूने किसके बूतेपर हमारे इस यज्ञकी निन्दा की है? तुझे पता है कि इस यज्ञका सम्पादक किस प्रकार हुआ है? इसमें शास्त्र-कथित सूक्ष्मसे सूक्ष्म विधि-विधानका भी उल्लङ्घन नहीं होने दिया गया है। समस्त यज्ञोपकरण एकत्र करके उनका उचित उपयोग हुआ है। पूजनीय पुरुषोंका पूजन, शास्त्रीय दृष्टिका पूर्णतः पालन, मन्त्रोच्चारणपूर्वक आहुति ईर्ष्या और द्वेष छोड़कर श्रद्धापूर्वक दान आदि इस यज्ञकी विशेषताएँ हैं। ब्राह्मणोंक दानसे, क्षत्रियोंको युद्धसे, पितरोंको श्राद्धसे, वैश्योंको संरक्षणसे, सती-साध्वी स्त्रियोको अभीष्ट मनोरथकी पूर्तिसे, शूद्रोंको अनुग्रहसे तथा दानसे बची हुई वस्तुएँ लुटाकर संतुष्ट किया गया है। सगे-सम्बन्धी तथा सजातीय लोगोंको, देवताओंको तथा सभीको प्रसन्न करनेको चेष्टा की गयी है। ऐसे सर्वगुणसम्पन्न यज्ञपर आक्षेप करते हुए तुझे लज्जा नहीं आयी है?'

ब्राह्मणोंकी बात सुन नेवला हँस पड़ा और बोला—'आप लोगोंकी बात ठीक है। किन्तु मेरे इस आधे शरीरकी ओर तो दृष्टिपात कीजिये; जहाँ सेरभर सत्तूका दान हुआ है,

वहाँ ब्राह्मणोंके चरणोदकमें लोटनेसे मेरा आधा शरीर सोनेका हो गया और इस यज्ञभूमिमें जहाँ अनन्त धनका दान हुआ हैं, लोट लगानेसे मेरे आधे शरीरको केवल कीचड़ हाथ लगी है। क्या, अब भी आप अपने इस यज्ञ-दानको सक्तुदानसे श्रेष्ठ बनानेका साहस करेंगे ?'

नेवला कहता गया—कुरुक्षेत्रमें एक तपस्वी ब्राह्मण थे। उनका नाम था मुद्गल। वे उञ्छवृत्तिसे जीवन निर्वाह करते थे। कबूतरके समान अन्नका एक-एक दाना चुनकर लाते और उसीसे कुटुम्बका पालन करते। परिवारमें चार प्राणी थे। ब्राह्मण परिवारसहित दो दिन उपवास करके तीसरे दिन मध्याह्नकालके बाद एक बार भोजन करते थे। उनका सारा समय धर्मानुष्ठान एवं भजन-ध्यानमें बीतता। एक समय वहाँ बड़ा भारी दुर्भिक्ष आया। उञ्छवृत्तिवालेको अन्न कहाँ मिले ? तीसरे दिन छठा काल आता और अन्न न मिलनेसे उल्लङ्घन या उपवास ही करना पड़ता था। बाहरसे सूर्यकी तपन और भीतर भूखकी ज्वाला ! वह क्षुधापीड़ित ब्राह्मणपरिवार बड़ी कठिनाईसे प्राण धारण किये शरीरका बोझ ढो रहा था। एक दिन उस परिवारने कहींसे अन्नके दाने बीने और दोपहरतक एक सेर जौका उपार्जन किया। भूज-पीसकर सत्तू तैयार किया। जप तथा नित्य-नियम पूर्ण करके अग्निमें विधिवत् आहुति दे वे एक-एक पाव सत्तू आपसमें बाँटकर खानेको उद्यत हुए। भोजनके लिए अभी बैठे ही थे कि कोई ब्राह्मण-अतिथि उनके यहाँ आ पहुँचे।

अतिथि देवता पधारे हैं—यह जानकर उन सबके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। सबने उठकर प्रणाम किया और उनका कुशल-मङ्गल पूछा। ब्राह्मण देवता अतिथिको कुटीके भीतर ले गये और उन्हें आसनपर बिठाया; फिर अपने गोत्र और ब्रह्मचर्यका परिचय देकर उनसे आतिथ्य ग्रहणके लिए प्रार्थना की। अतिथि देवता भी क्षुधासे आतुर ही दिखायी देते थे। ब्राह्मणने उनसे कहा—'भगवन् ! ये अर्घ्य, पाद्य और आसन सेवामें प्रस्तुत हैं। न्यायपूर्वक उपार्जित किये गये परम पवित्र सत्तू ग्रहण कीजिए। मैंने बड़ी प्रसन्नतासे यह अन्न आपको अर्पित किया है। आप स्वीकार करें।' अतिथि देवताको क्या आपत्ति थी ? उन्होंने सत्तू लेकर खा लिया। किन्तु तृप्त नहीं दिखायी दिये। अब ब्राह्मण देवता बड़ी चिन्तामें पड़े कि किस प्रकार इन्हें सन्तुष्ट किया जाय ?

'प्राणनाथ ! चिन्ता न करें। अभी मेरा भाग बचा है। इसे अतिथि देवताको खिलाकर सन्तुष्ट कीजिये।' ब्राह्मणीने बड़ी नम्रतासे निवेदन किया।

ब्राह्मण अपनी पत्नीको क्षुधासे क्षीण, वृद्ध, श्रान्त तथा अस्थिचर्मावशिष्ट शरीरसे काँपती देखकर कहा—'शोभने ! कीट, पतङ्ग और पशु भी अपनी स्त्रियोंकी रक्षा करते हैं। जो पुरुष होकर पत्नीके द्वारा अपना पालन, पोषण एवं रक्षण करता है, उसे दयाका पात्र समझना चाहिए। वह उत्तम यशसे भ्रष्ट होकर पुण्य लोकोंमें नहीं जाने पाता है। जो पुरुष स्त्रीकी रक्षा करना अपना कर्तव्य नहीं मानता अथवा जो स्त्रीकी रक्षा करनेमें असमर्थ होता है, वह महान् अपयशका भागी होकर नरकमें गिरता है। अतः मैं तुमसे सत्तू नहीं लूँगा।'

'नाथ ! हम दोनोंके धर्म और अर्थ तो समान हैं ! फिर मेरा दिया हुआ अन्न अग्राह्य क्यों ? स्त्रियोंका सत्य, धर्म, रति, स्वर्ग तथा समस्त अभिलषित वस्तु पतिके ही अधीन है।

स्त्रियोंका सबसे बड़ा देवता पति ही है। पतिके प्रसादसे ही पत्नीको सब कुछ मिलता है। आपने इस दासीका पालन किया है, अतः पति हैं, भरण करनेसे भर्ता हैं, श्रेष्ठ पुत्र दिया है, अतः वरद हैं, इसलिए मेरा सत्तू लेकर अतिथि देवताको सन्तुष्ट कीजिये।

'यह ठीक है, किन्तु तुम्हारी दुर्बलता देखकर लेनेका साहस नहीं होता।'

'आप भी तो जराजीर्ण वृद्ध, क्षुधार्त, अत्यन्त दुर्बल और उपवासपरिश्रान्त हैं। जब आप अपना सत्तू दे सकते हैं तो मैं क्यों नहीं दूँगी।'

ब्राह्मण निरुत्तर हो गये उन्होंने पत्नीका सत्तू लेकर अतिथिको परोस दिया। किन्तु वे देवता उसे खाकर भी अतृप्त ही रह गये।

ब्राह्मण फिर चिन्तामें पड़ गये। अतिथि इस घरसे अतृप्त चला जाय जो हमारा जीवन व्यर्थ है। इतनेमें ब्राह्मणका पुत्र अपना सत्तू लेकर सामने आया और बोला! 'पिता जी! यह दे दीजिये। इससे अतिथि सन्तुष्ट हों, यही सबसे महान् पुण्य है।'

पिताको संकोचमें पड़ा देख ब्राह्मणकुमारने कहा—'पुत्रका धर्म है, वृद्ध पिताका पालन। इस सूत्रको लेकर अब स्वधर्मकी रक्षा करें।'

'वत्स! मैं बूढ़ा हूँ, भूख सह लेनेका मुझे अभ्यास है। तुमको अभी दीर्घकालतक तप करना है, अतः इस सत्तूसे तुम्हीं प्राण-धारण करो।'

'पुत्र पिताका संकटसे त्राण करता है, इसलिए पुत्र कहलाता है। मुझे पुत्रधर्मका पालन करने दोजिये।'

ब्राह्मणने सत्तू लेकर प्रसन्न चित्तसे मुसकराते हुए अतिथिदेवकी सेवामें अर्पित कर दिया। अतिथिने उसे भी उदरस्थ कर लिया, किन्तु उनका पेट न भरा।

तब पुत्रवधू अपना सत्तू लाकर श्वसुरसे बोली—'आप मेरे गुरुके गुरु हैं, देवताके भी देवता—अतिथिदेवता हैं। मेरा शरीर, प्राण और धर्म सब कुछ गुरुजनकी सेवाके लिए ही है। इस सत्तूको लेकर अतिथिदेवको तृप्त कीजिये; इससे मैं कृतकृत्य हो जाऊँगी।'

ब्राह्मणने पुत्रवधूकी भूरि-भूरि प्रशंसा करके उसका सत्तू ले लिया। उसे खाकर अतिथि देव पूर्णतः तृप्त हो गये। अतिथिके वेषमें आये हुए ब्राह्मणदेवता साक्षाद्धर्म थे। उन्होंने कहा—विप्रवर! पत्नी, पुत्र और पुत्रबधूके साथ ब्रह्मलोक चलो। तुमने न्यायोपार्जित अन्नके श्रद्धापूर्वक दानसे ब्रह्मलोकपर विजय पायी है। इस सक्तु-दानकी तुलनामें अनेकानेक राजसूय और अश्वमेध भी नहीं आ सकते। तुम्हारे इस दानकी घोषणा स्वर्गलोकमें की जाती है। विमानपर बैठे हुए ब्रह्मलोकनिवासी ब्रह्मर्षि तुम्हारी अगवानीके लिए आये हैं। तुमने अतीत और अनागतकी सभी पीढ़ियोंका उद्धार कर दिया।

ब्राह्मण सपरिवार दिव्य देह धारण करके ब्रह्मधामको चले गये। वहाँकी भूमिमें लोटनेसे मेरा आधा शरीर स्वर्णमय हो गया। सोचा महाराज युधिष्ठिरके इस महान् यज्ञमें लोटनेसे शेष आधा भी स्वर्णमय हो जायगा। परन्तु मन-की-मनमें ही रह गयी!

ऐसा कहकर नेवला अदृश्य हो गया। वैशाखकी अमावास्याको सक्तुदान करके यह मुद्गलोपाख्यान सुननेकी प्रथा आज तक चली आती है।

शुभकामनाओं सहित—

डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमिया पुरम् (तमिलनाडु)

"राकफोर्ट" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोज़ोलाना
सिमेंट के निर्माता

तथा

लौह अयस्कके निर्यातक

DALMIA ENTERPRISES

मुख्य कार्यालय :

४, सिंधिया हाउस,

नई दिल्ली-१

शुभ कामनाओं सहित—

उड़ीशा सिमेंट लिमिटेड

राजगंगपुर (उड़ीशा)

"कोणार्क" मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड सिमेंट,
"ओसी" मार्का डालमिया पोजोलाना सिमेंट,
हर आकार और प्रकारकी डालमिया रिफ्रैक्टरीज

एवं

प्रीस्ट्रैस्ड कंक्रीट सामान के निर्माता

DALMIA ENTERPRISES

मुख्य कार्यालय :

४, सिंधिया हाउस

नयी दिल्ली–१

श्रीहरिः

'श्रीकृष्ण-सन्देश'के उद्देश्य तथा नियम

उद्देश्य : धर्म, अध्यात्म, भक्ति, साहित्य एवं संस्कृति-सम्बन्धी लेखोंद्वारा जनताको सुपथपर चलनेकी प्रेरणा देना और जनमानसमें सदाचार, सद्विचार, राष्ट्रप्रेम, आस्तिकता, समाजसेवा, सर्वाङ्गीण समुन्नति तथा युगके अनुरूप कर्तव्यबोधको जाग्रत् करना 'श्रीकृष्ण-सन्देश' का शुभ उद्देश्य है।

● **नियम :** उद्देश्यमें कथित विषयोंसे सम्बद्ध श्रुति, स्मृति, पुराण आदिके अविरुद्ध तथा आक्षेपरहित एवं लोककल्याणमें सहायक लेख ही इस पत्रिकामें प्रकाशित होते हैं। लेखोंमें काट-छाँट, परिवर्तन-परिवर्धन आदि करने अथवा उन्हें छापने, न छापनेका सम्पूर्ण अधिकार सम्पादकको है। अस्वीकृत लेख विना माँगे नहीं लौटाये जाते। वापसीके लिए टिकट भेजना अनिवार्य है। लेखमें प्रकाशित विचारके लिए लेखक ही उत्तरदायी है, सम्पादक नहीं।

लेखक उद्देश्यमें निर्दिष्ट विषयपर ही उत्तम विचारपूर्ण लेख भेजें। लेख स्वच्छ और सुपाठ्य अक्षरोंमें कागजके एक ही पृष्ठपर बायें हासिया छोड़कर लिखा होना चाहिए। लेखका कलेवर अधिक बड़ा न रहे। सामग्री सुन्दर, सामयिक तथा प्रेरणाप्रद हो। लेख सम्पादक—'श्रीकृष्ण-सन्देश' रू० नं० ६, कैलगढ़ कालोनी, जगतगंज-वाराणसीके पतेपर भेजें।

● 'श्रीकृष्ण-सन्देश' अगस्त माससे प्रारम्भ होकर प्रत्येक मासकी पहली तारीखको प्रकाशित होता है, इसका वार्षिक मूल्य ७) है। जो लोग एक सौ इक्यावन रुपये एक साथ एक बार जमा कर देते हैं, वे इसके आजीवन ग्राहक माने जाते हैं। उन्हें उसी चंदेमें उनके जीवनभर 'श्रीकृष्ण-सन्देश' मिलता रहेगा।

ग्राहकोंको अपना नाम पता सुस्पष्ट लिखना चाहिए। ७) चंदा मनि-आर्डर द्वारा अग्रिम भेजकर ग्राहक बनना चाहिए। वी० पी० द्वारा अंक जानेमें अनावश्यक विलम्ब तथा व्यय होता है।

● **विज्ञापन :** इसमें उत्तमोत्तम समाजोपयोगी वस्तुओंका ही विज्ञापन दिया जाता है। अश्लील, जादू-टोने आदि तथा मादक द्रव्योंके विज्ञापन नहीं छपते। विज्ञापन पूरे पृष्ठपर छपनेके लिए ५००) रुपये तथा आधे पृष्ठपर छपनेके लिए ३००) रुपये भेजना अनिवार्य है।

पत्र-व्यवहारका पता :
व्यवस्थापक—'श्रीकृष्ण-सन्देश'
श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ
मथुरा

• ★ •

ये छः—त्यागिये : कभी न त्यागिये

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निन्द्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥

ऐश्वर्य या उन्नति चाहनेवाले पुरुषोंका नींद, तन्द्रा (ऊँघना), डर, क्रोध, आलस्य तथा दीर्घसूत्रता (जल्दी हो जानेवाले काममें अधिक देर लगानेकी आदत)—इन छः दुर्गुणोंको त्याग देना चाहिए।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

मनुष्यको कभी भी सत्य, दान, कर्मण्यता, अनसूया (गुणोंमें दोष दिखानेकी प्रवृत्तिका अभाव), क्षमा तथा धैर्य—इन छः गुणोंका त्याग नहीं करना चाहिए।

(महाभारत-उद्योगपर्व)

• ★ •

श्रीकृष्ण-जन्मस्थान-सेवासंघ मथुरा के लिए देवधर शर्मा द्वारा
आनन्दकानन प्रेस ढुण्ढिराज, वाराणसी–१
में मुद्रित एवं प्रकाशित